धारा...52 ग्रंथांक...259

स्वधर्म/सुधर्म गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आचार्य कनकनन्दी के आद्यगुरु आचार्य विमलसागर जी जन्म शताब्दी महोत्सव

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती वीणा देवी डॉ. प्रो. प्रभात कुमार जी जैन, गाजियाबाद (आ. कनकनन्दी जी के शिष्य) वैज्ञानिक संगोष्ठी से प्राप्त राशि।
2. सेठ श्री विमलजी प्रकाशजी सर्राफ एवं परिवार, ग.पू. कॉलोनी, सागवाड़ा (प्रायश्चित के उपलक्ष्य में)

ग्रन्थांक-259 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य- 75/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

'स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुवर'

रचयत्री-विजयलक्ष्मी
स.आ. सुवत्सलमती

(राग : ऐ तो सच है के भगवान् है.....)

शिष्य बोले सुनो गुरुवर, स्वाध्याय तपस्वी आप भी हो
धरती पर रूप गुरुवर का, महावीर की पहचान है। (स्थायी)

स्वाध्याय कराते है जो, शिष्य सुनते सभी।
अभी आत्मा की पहचान, कनक गुरु से मिली।
आत्मबोध मिला, आत्मानुभव हुआ।
व्यर्थ भव बीते मेरे ये भान हो रहा।
मैंने क्या पाया क्या है खोया।
ये बताना ना आसान है।
धरती पर रूप गुरुवर का...(1)...

आत्मा से आत्मा को आत्मा में पाना है।
आत्मज्ञान से ही आत्मा में रमणा है।
अशुभ भाव त्याग शुभ भाव करूँ।
अनादिकालीन मिथ्यात्व(को) मैं हरूँ।
सम्यक्बोध गुरु से मिले।
यही विजया की भावना है...धरती पर रूप...(2)...

ज्ञान पिपासु हूँ ज्ञानामृत पान करूँ।
(तव) ज्ञान गंगा में मैं अवगाहन करूँ।
मेरी जिज्ञासा को आप सुलझाते हो।
अध्यात्म ज्ञान को हमको देते हो।
शक्ति रूप से मैं भगवान् हूँ।
जीव ही तो जिनेन्द्र बने...धरती पर रूप...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 21.06.2016, मध्याह्न 2.35

मेरे सर्वस्व कनकनन्दी गुरुवर

रचयत्री-विजयलक्ष्मी गोदावत
सहायक-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : प्रेम रतन धन पायो.....)

तुम्हीं मेरी माता...तुम्हीं तो पिता हो...
तुम्हीं मेरे भ्राता...तुम्हीं मेरे त्राता...
सर्वस्व तुम हो...'कनक' गुरुवर...
हो...ला...हो...

गुरु के गुण गाऊँ-गाऊँ...
गुरुवर महान् है...आगम की खान है...
विजया करे तुमको...शत-शत प्रणाम है...
गाऊँ रे...गुरु के गुण गाऊँ-गाऊँ...

1. आत्मा का बोध...सबको कराये...
आत्म विहारी है...समताधारी है...
वाक् आडम्बर...इनको न भाये...
वाग्मि गुरुवर...सत्य ही चाहे...
गाऊँ रे...गुरु के गुण गाऊँ...

2. पापी से भी...शिक्षा गहे...
निन्दा नहीं करते...अनुभवशील है...
सर्वश्रेष्ठ ज्ञान दान...भव्य तुमसे पाये...
सत्य ज्ञान पाके तुमसे...जीवन सफल करे...
गाऊँ रे...गुरु के गुण गाऊँ...

3. आत्म प्रशंसा...होती है क्या?...
तुमसे ही जाना...आत्म गौरव जाना...
तन-मन इन्द्रियाँ...नहीं हूँ 'मैं'...
'मैं' हूँ सच्चिदानन्द...शुद्ध परमात्मा...
गाऊँ रे...गुरु के गुण गाऊँ...

रागी-द्वेषी-मोही से मेरी प्रशंसा भी मैं न चाहूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

मेरी प्रशंसा भी मैं ही करूँ, रागी द्वेषी मोही से नहीं मैं चाहूँ।
मैं हूँ अमूर्तिक व चिन्मय रूप, रागी द्वेषी मोही से अज्ञात रूप।।

श्रद्धा-प्रज्ञा से मैं अनुभवगम्य, इन्द्रिय व यंत्रों से भी मैं हूँ अगम्य।
रागी द्वेषी मोही में न श्रद्धा व पूजा, अनुभव रहित अतः उनसे अगम्य।।

यथा जन्मान्ध न देखे विशाल सूर्य, स्व-पर प्रकाशी भी उदित सूर्य।
सूर्य प्रकाश से चक्षुष्मान देखते, किन्तु जन्मान्ध सूर्य को भी न देखते।। (1)

मैं हूँ स्व-पर प्रकाशी चैतन्य सूर्य, रागी द्वेषी मोही श्रद्धा-प्रज्ञा से अंध (शून्य)।
वे न स्व-स्वरूप को भी देख पाते, वे क्या मेरे स्वरूप को देख पायेंगे।।

वे तो शरीर को ही स्वरूप मानते, सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि को मेरी मानते।
राग द्वेष मोह काम को न पर मानते, मोहान्ध होने से आत्मा को न जानते।। (2)

ऐसे जन क्या मेरी प्रशंसा कर पायेंगे, उनकी प्रशंसा में राग द्वेष मोह ही होंगे।
ऐसी प्रशंसा से तो मेरी निन्दा ही हुई, उनकी निन्दा से भी मेरी हानि न हुई।।

जोंक को चाहिए यथा दूषित रक्त, गिद्धों को चाहिए यथा सड़ता शव।
रागी द्वेषी मोही को चाहिए दूषित भाव/(काम), मुझे तो चाहिए स्व-शुद्धात्मा भाव।। (3)

अतएव मेरी प्रशंसा मैं ही करता, श्रद्धा-प्रज्ञा-अनुभव से तन्मय होता।
स्व-शुद्धात्मा का करता हूँ ध्यान-अध्ययन, मनन चिन्तन व लेखन प्रवचन।।

रागी द्वेषी मोही की मैं न प्रशंसा करूँ, राग द्वेष मोह रिक्त समता धरूँ।
गुण-गुणी-प्रशंसा सदा मैं करूँ, 'कनकनन्दी' शुद्धात्मा भावना धरूँ।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 16.05.2016, रात्रि 8.43

संदर्भ-

येनात्मनाऽनुभूयेऽहमात्मनैवात्मनाऽत्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः।।23।।

भावार्थ-अन्तरात्मा विचार करता है कि जीव में स्त्री-पुरुष आदि का व्यवहार

केवल शरीर को लेकर होता है; इसी प्रकार एक-दो और बहुवचन का व्यवहार भी शरीराश्रित है अथवा गुण-गुणी की भेद कल्पना के कारण होता है; जब शरीर मेरा रूप ही नहीं है और मेरा शुद्ध स्वरूप निर्विकल्प है तब मुझमें लिंगभेद और वचनभेद कैसे बन सकता है? ये स्त्रीत्वादि धर्म तो कर्मजनित अवस्थाएँ हैं, मेरा निजरूप नहीं है- मेरा शुद्ध चैतन्य स्वरूप इन सबसे परे है।।23।।

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्।।24।।

भावार्थ-जब तक इस जीव को शुद्ध चैतन्य रूप अपने निज स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तब तक ही यह जीव मोहरूपी गाढ़ निद्रा में पड़ा हुआ सोता रहता है; किन्तु जब अज्ञान भावरूप निद्रा का विनाश हो जाता है और शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है उसी समय से यह जागरित कहलाता है। संसार के रागी जीव व्यवहार में जागते हैं किन्तु अपने आत्मस्वरूप में सोते हैं; परन्तु आत्मज्ञानी संयमी पुरुष व्यवहार में सोते हैं और आत्मस्वरूप में सदा सावधान एवं जागृत रहते हैं।।24।।

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।। मोक्षप्राभृते, कुंदकुंदः

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। गीता-2-69

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रियः।।25।।

भावार्थ-जब तक यह जीव अपने निजानन्दमयी स्वाभाविक निराकुलता रूप सुधामृत का पान नहीं करता तब तक ही वह बाह्य पदार्थों को भ्रम से इष्ट-अनिष्ट मानकर उनके संयोग-वियोग के लिए सदा चिन्तित रहता है और जो उस संयोग-वियोग में साधक होते हैं उन्हें अपना शुत्र-मित्र मान लेता है, किन्तु जब आत्मा प्रबुद्ध होकर यथार्थ वस्तुस्थिति का अनुभव करने लगता है तब उसकी राग-द्वेषादि रूप विभाव परिणति मिट जाती है और इसलिये बाह्य सामग्री के साधक-बाधक कारणों में उसके शत्रु-मित्रता का भाव नहीं रहता। वह तो उस समय अपने ज्ञानानन्द स्वरूप में मग्न रहना ही सर्वोपरि समझता है।।25।।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।।26।।

भावार्थ-आत्मज्ञानी विचारता है कि शत्रु-मित्र की कल्पना परिचित व्यक्ति में ही होती है-अपरिचित व्यक्ति में नहीं। ये संसार के बेचारे अज्ञप्राणी जो मुझे देखते जानते ही नहीं-मेरा आत्मस्वरूप जिनके चर्म-चक्षुओं के अगोचर है-वे मेरे विषय में शत्रु-मित्र की कल्पना कैसे कर सकते है? और जो मेरे स्वरूप को जानते हैं-मेरे शुद्धात्म स्वरूप साक्षात् अनुभव करते हैं-उनके राग-द्वेष का अभाव हो जाने से शत्रु-मित्रता के भाव की उत्पत्ति नहीं बनती, फिर वे मेरे शत्रु वा मित्र कैसे बन सकते हैं? इस तरह अज्ञ और विज्ञ दोनों ही प्रकार के जीव मेरे शत्रु या मित्र नहीं है।।26।।

त्यक्त्वैव बहिरात्मानमन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत्परमात्मानं सर्वसंकल्पवर्जितम्।।27।।

भावार्थ-बहिरात्मावस्था को अत्यंत हेय (त्यागने योग्य) समझकर छोड़ देना चाहिए और आत्मस्वरूप का ज्ञायक अंतरात्मा होकर जगत् के द्वंद्व-फंद चिंता आदि से मुक्त हुआ आत्मोत्थ स्वाधीन सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मा के चिंतन आराधन पूर्वक तद्रूप बनने की भावना करनी चाहिए।।27।।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्।।28।।

भावार्थ-जब ''सोऽहम्'' की दृढ़ भावना द्वारा परमात्मा के साथ जीवात्मा की एकत्व बुद्धि हो जाती है तभी इस जीव को अपनी अनंत चतुष्टयरूपनिधि का परिज्ञान हो जाता है और वह अपने को वीतरागी परमआनंद स्वरूप मानने लगता है। उस समय काल्पनिक क्षणिक सांसारिक सुख के कारण बाह्य पदार्थों में उसका ममत्व छूट जाता है, राग-द्वेष की मंदता हो जाती है और अभेदबुद्धि से परमात्मस्वरूप का चिंतवन करते-करते अपने आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाता है। इसी को आत्मलाभ कहते है, जिसके फलस्वरूप आत्मा अनंतकाल तक निराकुल अनुपम स्वाधीन सुख का भोक्ता होता है। अतः 'सोऽहम्' की यह भावना बड़ी ही उपयोगी है, उसके द्वारा अपने आत्मा में परमात्मपद के संस्कार डालने चाहिए।।28।।

मेरा लक्ष्य-स्वयं का ही वंदन-अभिनंदन-रमण

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कनकनन्दी-कनकनन्दी जपो.....)

राग द्वेष मोह काम क्रोध छोड़कर, जब मैं स्वयं का करता स्मरण।
ध्यान-अध्ययन व मनन चिन्तन, तब मैं स्वयं का स्व-द्वारा करूँ।

भाव नमस्कार करूँ मैं निशि-दिन, स्वयं में स्थित स्व-शुद्धात्मा को नमन।
व्यवहार-निश्चय पंच परमेष्ठी को, रत्नत्रय व दशधा धर्म को।

ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि छोड़कर, जब मैं स्व-शुद्धात्मा का करूँ रमण।
तब मैं स्वयं की पूजा आराधना, करता हूँ अपनी वंदना निशि-दिन। भाव...

शत्रु-मित्र व भेद-भाव छोड़कर, जब मैं समता व शांति से करूँ लेखन।
तब मैं स्वयं का ही करता गुणगान, निश्चय व्यवहार से स्वयं का गुणगान। भाव...

कर्म सिद्धांत मार्गणा गुणस्थानों का, करता हूँ जब अध्ययन व अध्यापन।
तब मैं स्वयं का ही करता अनुसंधान, नय-निक्षेप व आगम प्रमाण। भाव...

प्रथमानुयोग से दृष्टांतों के द्वारा, दृष्टांत रूप में मेरा करता हूँ ज्ञान।
करणानुयोग से गणित व भाव द्वारा, मेरे ही स्वरूप का करता हूँ ज्ञान। भाव...

चरणानुयोग द्वारा निश्चय-व्यवहार से, मेरे ही मोक्षमार्ग का करता हूँ ज्ञान।
द्रव्यानुयोग द्वारा मेरे ही द्रव्य का, गुण-पर्याय रूप से करता हूँ ज्ञान। भाव...

मेरे में ही निहित है मेरे परमेश्वर, उसका मैं निशि-दिन करूँ वंदन।
स्वयं के द्वारा ही स्वयं का वरण, 'कनक' चाहे सदा आत्मा में रमण। भाव...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 16.05.2016, अपराह्न 5.25

संदर्भ-

(णमो तस्स) निर्दोषनिजपरमात्मन्याराध्याराधक सम्बन्धलक्षणो भावना-मस्कारोऽस्तु तस्यैव। अत्रैतदुक्तं भवति-अस्य मोक्षकारणभूत शुद्धोपयोगस्य मध्य सर्वेष्टमनोरथा लभ्यन्त इति मत्वा शेष मनोरथपरिहारे तत्रैव भावना कर्त्तव्येति। (प्रवचनसार)

इसलिए उस ही शुद्धपयोगी को निर्दोष निज परमात्मा में ही आराध्य-आराधक

संबंध रूप भाव-नमस्कार हो। भाव यह कहा गया है इस मोक्ष के कारणभूत शुद्धोपयोग के ही द्वारा सर्व इष्ट मनोरथ प्राप्त होता है ऐसा मानकर शेष सर्व मनोरथ को त्यागकर इसी शुद्धोपयोग की ही भावना करनी योग्य है।

मेरी सम्यक् व्यवहार की प्रवृत्ति

(सही व्यवहार करने की शिक्षा मिलती है पंच समिति से)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

पंच समिति से मुझे मिलती शिक्षा, सही व्यवहार की उत्तम शिक्षा।
आहार-विहार-निहार-भाषा की, उठाना-रखना की सम्यक् शिक्षा।। (1)

अहिंसक स्वास्थ्यकर आहार लेना, याचना दबाव बिन आहार लेना।
ध्यान-अध्ययन वैयावृत्ति निमित्त, आहार लेना केवल साधना निमित्त।। (2)

जीवों की रक्षा सहित विहार करना, स्वाध्याय तीर्थ वंदना स्वास्थ्य हेतु करना।
पैदल ही सम्यक् रीति से विहार करना, प्रासूक प्रदूषण रिक्त स्थल (क्षेत्र) में करना।। (3)

निहार (शौच) भी एकांत स्वच्छ स्थान में करना, ग्राम नगर से दूर स्थान में करना।
जलाशय बगीचा व रास्ता से दूर, अनिषेध निर्जन्तुक स्थान में करना।। (4)

भाषा समिति से मुझे शिक्षा मिलती, हित-मित-प्रिय कथन (की) शिक्षा मिलती।
निन्दा कलहकारी अपमान कारक, नहीं बोलना मुझे अप्रिय कारक।। (5)

असत्य प्रमादयुक्त भी नहीं बोलना, सत्य भी कलहकारी/(निन्दाकर) नहीं बोलना।
निन्दनीय दोषयुक्त भी नहीं बोलना, अप्रिय कठोर वचन भी नहीं बोलना।। (6)

असि मसि कृषि व्यापार शिल्प व सेवा (नौकरी), पंच पाप सप्त व्यसन की अनुमोदना।
अहितकर भीतिकर खेदकर कथन, नहीं करना मुझे वैर शोक कथन।। (7)

एकांतवास मौन में रहना चाहता हूँ, (अध्यापन) स्वाध्याय-प्रवचन भी कर रहा हूँ।
धर्मनाश क्रियाध्वंस सिद्धांत विप्लव में, बिना पूछे भी कथन/(लेखन) करता हूँ।। (8)

उपकरण उठाना रखना आदि में, उठना-बैठना व सोना आदि में।
शालीन व सम्यक् क्रिया करूँ सभी में, ऐसी शिक्षा मिले (मुझे) आदान निक्षेपण से।। (9)

बाह्य प्रवृत्ति करूँ मैं निवृत्ति हेतु, निस्पृह निराडम्बर समता के हेतु।
व्यर्थ काम (व) उद्दण्डता न करूँ कभी मैं, ऐसी महान् शिक्षा लहूँ समितियों से।। (10)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 11.05.2016, प्रातः 7.46

संदर्भ-

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः। (5)

Walking, speech, eating, lifting and laying down and depositing waste products constitute the fivefold regulation of activities.

समिति-Carefulness in to take.

सम्यक्ईर्या समिति-Proper care in walking.

सम्यक्भाषा समिति-Proper care in speaking.

सम्यक्एषणा समिति-Proper care in eating.

सम्यक्आदाननिक्षेप समिति-Proper care in lifting and laying.

सम्यक्उत्सर्ग समिति-Proper care in excreting.

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं।

(1) ईर्या समिति-

फासुयमग्गेण दिवा जुंगतरप्पेहिणा सकज्जेण।

जंतूणि परिहरंतेणिरियासमिदी हवे गमणं।। (11) (मूलाचार भाग-1)

प्रयोजन के निमित्त चार हाथ आगे जमीन देखने वाले साधु के द्वारा दिवस में जीवों की रक्षा करते हुए गमन करना ईर्या समिति है।

'प्रगता असवो यस्मिन्'-निकल गये हैं प्राणी जिसमें से उसे प्रासुक कहते हैं। ऐसा प्रासुक-निरवद्य मार्ग है। उस प्रासुक मार्ग से अर्थात् हाथी, गधा, ऊँट, गाय, भैंस और मनुष्यों के समुदाय के गमन से उपमर्दित हुआ जो मार्ग है उस मार्ग से दिवस में-सूर्य के उदित हो जाने पर, चक्षु से वस्तु स्पष्ट दिखने पर चार हाथ आगे जमीन को देखते हुए अर्थात् अच्छी तरह एकाग्रचित्त पूर्वक पैर रखने के स्थान का अवलोकन करते हुए सकार्य अर्थात् शास्त्रश्रवण, तीर्थयात्रा, गुरुदर्शन आदि प्रयोजन से, एकेन्द्रिय आदि जंतुओं की विराधना न करते हुए जो गमन करना होता है वह ईर्या समिति है। इससे यह भी समझना कि धर्मकार्य के बिना साधु को नहीं चलना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि, धर्मकार्य के निमित्त चार हाथ आगे देखते हुए साधु के द्वारा दिवस में प्रासुक मार्ग से जो गमन किया जाता है वह ईर्या समिति कहलाती है अथवा साधु का जीवों की विराधना न करते हुए जो गमन है वह ईर्या समिति है।

(2) भाषा समिति-

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदाप्पपसंसविकहादी।

वज्जित्ता सपरहियं भासासमिदी हवे कहणं।। (12)

चुगली, हँसी, कठोरता, परनिन्दा, अपनी प्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर अपने और पर के लिए हितरूप बोलना भाषा समिति है।

पिशुन-चुगली के भाव को पैशून्य कहते हैं-अर्थात् निर्दोष के दोषों का उद्भावन करना, निर्दोष को दोष लगाना। हास्य कर्म के उदय से अधर्म के लिए हर्ष होना हास्य है। कान के लिए कठोर, काम और युद्ध के प्रवर्तक वचन कर्कश हैं। पर के सच्चे अथवा झूठे दोषों को प्रगट करने की इच्छा का होना अथवा अन्य के गुणों को सहन नहीं कर सकना यह परनिन्दा है। अपनी प्रशंसा-स्तुति करना अर्थात् अपने गुणों को प्रकट करने का अभिप्राय रखना और स्त्रीकथा, भक्तकथा, चोरकथा और राजकथा आदि को कहना विकथादि हैं। इन चुगली आदि के वचनों को छोड़कर अपने और पर के लिए सुखकर अर्थात् कर्मबंध के कारणों से रहित वचन बोलना भाषा समिति है।

तात्पर्य यह है कि पैशून्य, हास्य, कर्कश, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर स्व और पर के लिए हितकर जो कथन करना है वह भाषा समिति है।

(3) एषणा समिति-

छादालदोससुद्धं कारणजुत्तं विसुद्धणवकोडी।

सीदादीसमभुत्ती परिसुद्धा एसणासमिदि।। (23)

छियालीस दोषों से रहित शुद्ध, कारण से सहित, नव-कोटि से विशुद्ध और शीत-उष्ण आदि में समान भाव से भोजन करना यह सम्पूर्णतया निर्दोष एषणा समिति है।

उद्गम, उत्पादन, एषणा आदि छियालीस दोषों से शुद्ध आहार निर्दोष कहलाता है। असाता के उदय से उत्पन्न हुई भूख के प्रतिकार हेतु और वैयावृत्य आदि के

निमित्त किया गया आहार कारण युक्त होता है। मन, वचन, काय को कृत, कारित-अनुमोदना से गुणित करने पर नव होते हैं। इन नव-कोटि विकल्पों से रहित आहार नव-कोटि विशुद्ध है। ठण्डा, गर्म, लवण से सरस या विरस अथवा रूक्ष आदि भोजन में समान भाव अर्थात् शीत-उष्ण आदि भोज्य वस्तुओं में राग-द्वेष रहित होना, इस प्रकार सब तरफ से निर्मल निर्दोष आहार ग्रहण करना एषणा समिति होती है। तात्पर्य यह है कि छियालीस दोष रहित जो आहार ग्रहण का है जो कि कारण सहित है और मन-वचन-काय पूर्वक कृत कारित अनुमोदना से रहित तथा शीतादि में समता भावरूप है, वह साधु के निर्मल एषणा समिति होती है।

(4) आदान-निक्षेपण समिति-

णाणुवहि संजमवहिं सउचुवहिं अण्णमप्पमुवहिं वा।
पयदं गहणिक्खेवोसमिदि आदाणणिक्खेवा।। (34)

ज्ञान का उपकरण, संयम का उपकरण, शौच का उपकरण अथवा अन्य भी उपकरण को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना और रखना आदान निक्षेपण समिति है। ज्ञान-श्रुतज्ञान के, उपधि-उपकरण अर्थात् ज्ञान के निमित्त पुस्तक आदि ज्ञानोपधि हैं। पाप क्रिया से निवृत्ति लक्षण वाले संयम के उपकरण अर्थात् प्राणियों की दया के निमित्त पिच्छिका आदि संयमोपधि हैं। मल आदि के दूर करने के उपकरण अर्थात् मल-मूत्रादि प्रक्षालन के निमित्त कमण्डलु आदि द्रव्य शौचोपधि हैं। अन्य भी उपधि का अर्थ है संस्तर आदि उपकरण। अर्थात् घास, पाटा आदि वस्तुएँ। इन सब उपकरणों को प्रयत्नपूर्वक अर्थात् उपयोग स्थिर करके सावधानीपूर्वक ग्रहण करना तथा देख, शोधकर ही रखना यह आदान निक्षेपण समिति है। यहाँ गाथा में 'उपधि' शब्द में द्वितीया विभक्ति है किन्तु प्राकृत व्याकरण के बल से यहाँ पर षष्ठी विभक्ति का अर्थ लेना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि ज्ञानोपकरण, संयमोपकरण, शौचोपकरण तथा अन्य भी उपधि (वस्तुओं) का सावधानीपूर्वक पिच्छिका से प्रतिलेखन करके जो उठाना और धरना है वह आदान निक्षेपण समिति है।

(5) प्रतिष्ठापन समिति-

एगंते अच्चित्ते दूरे गूढे विसालमविरोहे।
उच्चारादिच्चाओ पदिठावणिया हवे समिदि।। (15)

एकांत, जीव-जंतु रहित, दूर स्थित, मर्यादित, विस्तीर्ण और विरोध रहित

स्थान में मल-मूत्रादि का त्याग करना प्रतिष्ठापना समिति है।

जहाँ पर असंयत जनों का गमनागमन नहीं है, ऐसे विजन स्थान को एकांत कहते हैं। हरितकाय और त्रसकाय आदि से रहित जले हुए अथवा जले के समान ऐसे स्थण्डिल-खुले मैदान को अचित्त कहा है। ग्राम आदि से दूरस्थान को यहाँ दूर शब्द से सूचित किया है। संवृत्त-मर्यादा सहित स्थान अर्थात् जहाँ लोगों की दृष्टि नहीं पड़ सकती ऐसे स्थान को गूढ़ कहते हैं। विस्तीर्ण या बिलादि से रहित स्थान विशाल कहा गया है और जहाँ पर लोगों का विरोध नहीं है वह अविरुद्ध स्थान है। ऐसे स्थान में शरीर के मल-मूत्रादि का त्याग करना प्रतिष्ठापना नाम की समिति है। तात्पर्य यह हुआ कि एकांत, अचित्त, दूर, गूढ़, विशाल और विरोध रहित प्रदेशों में सावधानीपूर्वक जो मल आदि का त्याग करना है वह मल-मूत्र विसर्जन के रूप में प्रतिष्ठापन समिति होती है। ये समितियाँ पर्यावरण शुद्ध के लिए कारणभूत भी है।

मेरी उपलब्धि अलौकिक-अभौतिक=आध्यात्मिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

मेरी उपलब्धि है लौकिक परे, धन जन मान व भौतिक परे।
तन-मन इन्द्रिय व संसार परे, राग द्वेष मोह व कामना परे।।

संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, आकर्षण-विकर्षण-द्वंद परे।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे, चैतन्य चमत्कार आनंद पूरे।।

मेरी उपलब्धि शाश्वत-आत्मोत्थ, पर निरपेक्ष मौलिक स्वतंत्र।
अनंत अव्याबाध आनंद कंद, सच्चिदानंदमय शुद्ध स्वभाव।।

इसी से भिन्न सभी (ही) उपलब्धियाँ, सदेवासुर व मनुष्य कृतियाँ।
इन्द्र से लेकर चक्रवर्ती की भी, भौतिक कृत्रिम कर्म-कृतियाँ।।

ये सभी उपलब्धियाँ न होती शाश्वत, नहीं अनंत व आनंददायक।
राग द्वेष मोह क्षोभ उत्पादक, संकल्प-विकल्प व संक्लेशदायक।।

इसी से जो होता कर्मों का बंधन, उसी से मिलता है संसार भ्रमण।
जिससे अनंत दुःख होता उत्पन्न, जन्म-मरण-रोग संताप कारण।।

इन उपलब्धियों को (अतः) करता मैं त्याग।
नवकोटि से सेवता हूँ ज्ञान-वैराग्य।।

आत्मोपलब्धि हेतु ही (मैं) करूँ साधना।
'कनकनन्दी' करे सदा आत्म आराधना।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 03.06.2016, मध्याह्न 11.35

मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., भातुकली.....)
मेरा स्वधर्म तो मुझ में ही स्थित, अन्य में नहीं है अवस्थित।
अतः स्वधर्म (ही) मुझ में ही, स्वयं को पाना है यह सत्य।। (1)

'सद् द्रव्यलक्षणम्' से सिद्ध होता है, मेरा स्वरूप है सत् स्वरूप।
'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्' से सिद्ध है, मुझ में ही अरिहंत व सिद्ध।। (2)

'उत्पाद व्यय ध्रौव्य' स्वरूप द्रव्य है, अतः धर्म मुझ में भी तीनों रूप।
मुझमें ही मेरा धर्म उत्पन्न होता, मुझमें ही विलय व ध्रौव्य/(स्थित) होता।। (3)

मेरा रत्नत्रय मुझमें ही स्थित, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमार्ग।
मुझमें ही रत्नत्रय पूर्ण होता, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमय।। (4)

सत्य स्वरूप हूँ अतः (हूँ) सनातन, अनादि अनिधन स्वयंभू पूर्ण।
अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य।। (5)

यही मेरा रूप यही मेरा सर्वस्व, यही मेरा सद्धर्म व स्वधर्म।
इसी से भिन्न सभी राग द्वेष मोहादि, मुझसे परे सभी कर्मज भाव।। (6)

पर विभावों को त्यागकर मुझे ही, स्वभाव को पाना है मेरा स्वधर्म।
इसी हेतु ही व्यवहार धर्म विधेय, 'कनकनन्दी' हेतु स्वधर्म ही ध्येय।। (7)

जिया रे! तेरा शुद्ध-स्वभाव ही तेरा स्वधर्म!

(धर्म हेतु राग-द्वेष-मोह भी अधर्म)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू धर्म/(स्वयं) को सही समझोऽऽऽ
''वस्तु स्वभाव धर्म'' होने सेऽऽऽ स्व-वस्तु (को) सही समझोऽऽऽ
/(स्व-धर्म सही समझोऽऽऽ)...(ध्रुव)...

तेरा वस्तु ही तेरा स्वभावऽऽऽ तेरा स्वभाव ही तेरा धर्मऽऽऽ
तेरा स्वभाव तो 'सच्चिदानंद'ऽऽऽ यह ही है तेरा स्व-धर्मऽऽऽ
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रऽऽऽ
अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्यऽऽऽ...(1)...

स्व-स्वभाव से भिन्न अन्य सभीऽऽऽ नहीं है तेरा स्वधर्मऽऽऽ
कर्मजनित विकार या अधर्मऽऽऽ अथवा अन्य के होते स्वधर्मऽऽऽ
ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्धऽऽऽ...(2)...

सचित्त-अचित्त व मिश्र परिग्रहऽऽऽ द्रव्य-भाव व नोकर्मऽऽऽ
ये सब नहीं तेरे स्वभावऽऽऽ अतः ये न तेरे स्वधर्मऽऽऽ
(इनसे) राग-द्वेष-मोह अधर्मऽऽऽ
(इनके) त्याग से मिले स्वधर्मऽऽऽ...(3)...

राग-द्वेष-मोह त्याग हेतु जोऽऽऽ पालनीय होते व्रत-नियमऽऽऽ
स्तुति-वंदना व तप त्याग आदिऽऽऽ होते धर्म प्राप्ति निमित्त/(साधन)ऽऽऽ
साधन से पाओ स्वधर्मऽऽऽ
साधक न बने बाधकऽऽऽ...(4)...

रीति-रिवाज व क्रिया-काण्ड हीऽऽऽ नहीं होते हैं पूर्ण धर्मऽऽऽ
इसीलिये तो राग-द्वेष-मोहऽऽऽ होता पूर्णतः अधर्मऽऽऽ
अधर्म से न मिले स्वधर्मऽऽऽ...(5)...

भेद विज्ञान व आत्मानुभव सेऽऽऽ करो हे! तू आत्म विशुद्धिऽऽऽ

आत्म विशुद्धि से स्वधर्म प्राप्तिऽऽऽ यह ही है परम मुक्तिऽऽऽ

'कनक' की अंतिम परिणतिऽऽऽ...(6)...

(धर्म के नाम पर हो रही अधार्मिक प्रवृत्तियों से बचने के लिए व आत्म दृढ़ता हेतु यह कविता बनी।)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 19.03.2016, रात्रि 10.30

मेरी आत्मचर्चा से प्राप्त लाभ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

आत्मचर्चा से करूँ (मैं) आत्मसंबोधन, आत्मविश्लेषण सह आत्मपरिमार्जन।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र इसी से होते, जिससे संपूर्ण सही कार्य भी होते।।
मैं हूँ अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यवान्, जब ऐसे होते आत्मविश्वास व ज्ञान।
तब ही सही आत्म विश्लेषण न भी होता, आत्मपरिमार्जन रूपी चारित्र (भी) होता।।
इसी से होता गुण विकास व दुर्गुण नाश, हिताहित विवेक का भी होता विकास।
करणीय-त्यजनीय का भी होता सुज्ञान, जिससे होता है सही आचरण।।
भावात्मक दुर्बलतायें होती है क्षीण, राग द्वेष मोहादि भी होते हैं क्षीण।
समता-सहिष्णुता-शांति उपजती, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी प्रगट होती।।
संयम धैर्य व दृढ़ता भी बढ़ती, उत्तम कार्य सभी भी सम्पादन होते।
वैर-विरोध व संक्लेश न होते, बाधा विघ्न व द्वंद भी नशते।।
हिंसा झूठ चोरी कुशील व परिग्रह, त्याग होते हैं फैशन-व्यसन।
अन्याय अत्याचार शोषण मिलावट, त्याग होते आर्त-रौद्र ध्यान।।
आध्यात्मिक शक्तियाँ न क्षीण होती, अधिक से अधिक ये शक्तियाँ बढ़ती।
जिससे हर सुकार्य होते सरलता से, पाप नाश होते व पुण्य भी बढ़ते।।
तीर्थंकरों ने भी ऐसे ही किया, सर्वज्ञ बनकर ऐसा ही बताया।
अभ्युदय से मोक्ष तक ये ही कारण, 'कनकनन्दी' भी करे ऐसा आचरण।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 05.06.2016, मध्याह्न 1.14

(यह कविता डॉ. शैड हेल्म्सटेटर की पुस्तक Who are you really and what do you want? से भी प्रभावित)

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	'स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुवर'	2
2.	मेरे सर्वस्व कनकनन्दी गुरुवर	3
3.	रागी-द्वेषी-मोही से मेरी प्रशंसा भी मैं न चाहूँ	4
4.	मेरा लक्ष्य-स्वयं का ही वंदन-अभिनंदन-रमण	7
5.	मेरी सम्यक् व्यवहार की प्रवृत्ति	8
6.	मेरी उपलब्धि अलौकिक-अभौतिक=आध्यात्मिक	12
7.	मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म	13
8.	जिया रे! तेरा शुद्ध-स्वरूप ही तेरा स्वधर्म	14
	स्वधर्म/सुधर्म गीताञ्जली	
1.	मेरी आत्मचर्चा से प्राप्त लाभ	15
2.	हे! जिनवाणी-जगकल्याणी	18
3.	स्व शुद्धात्मा ही स्व-धर्म	18
4.	आत्मा! तेरी अनंत गाथा	19
5.	आध्यात्मिक गुरुओं के गुण कीर्तन	23
6.	मेरा आध्यात्मिक लक्ष्य	24
7.	विश्व में सबसे बड़े 3 दोष/(पाप) व 3 गुण/(धर्म)	26
8.	निश्चय-व्यवहार : वैश्विक-विविध रूप	26
9.	कितना प्यारा (न्यारा) द्रव्य है मेरा	27
10.	वह आत्म तत्त्व है मेरा	28
11.	परभाव व विभाग त्याग से स्व-आराधना करूँ	30
12.	मैं व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय रत्नत्रयमय बनूँ	31
13.	लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रमुख तीन कारण	32
14.	माँ जिनवाणी से सुनूँ-मेरी भाव की कहानी	33
15.	सर्वमनोरथ पूर्ण होने के उपाय	37
16.	समता! तेरी अनंत शक्ति	38
17.	मुझे स्व-अनंत ज्ञान चाहिए	45

18.	मैं स्वयं को ही मनाऊँ अन्य सभी माने?	46
19.	सरलता (ऋजुता) की अनंत पावन शक्ति	46
20.	शिष्य-श्रोता की श्रेष्ठता व कर्त्तव्य	47
21.	ऐसा क्यों?	48
22.	पापात्मक उत्सव/(आनंद)!?	50
23.	संकीर्ण धर्म आदि तोड़े : विज्ञान जोड़े	65
24.	बड़े कट्टर होते हैं रूढ़िवादी धार्मिक	65
25.	भाईचारा (विश्व बंधुत्व) की अयथार्थता व यथार्थता	66
26.	मद्यपी-उत्पादक-सरकार-विक्रेता आदि अपराधी	67
27.	अर्थ उपार्जक सभी कर्म है लौकिक व पापकारक	68
28.	जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)	71
29.	अनेकांत से होता है विषयों का अंतर्सम्बन्ध व स्याद्वाद से होता है उसका कथन	76
30.	तीन काल में स्वाध्याय परम तप अतएव	81
31.	भगवान् विमलनाथ पूजन	89
32.	तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की पूजा	93
33.	आरती	96
34.	**अयाचक निस्पृही संत प्रवर श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ के आगामी चातुर्मास**	**97**
35.	सार्थक श्रुत पञ्चमी प्रभावना	98
36.	श्रुत पंचमी : मेरे जीवन में घटित सत्य-प्राप्त शिक्षा	99
37.	मेरी भाषा अन्य को क्यों लगती है श्रेष्ठ-क्लिष्ठ (गलत)	101
38.	स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुदेव का पूजन	102
39.	आचार्यश्री कनकनन्दी को आ. ऋद्धिश्री का पत्र	105
40.	आचार्यश्री कनकनन्दी को आ. जिनवाणी का पत्र	106
41.	श्री चारित्रशुद्धि व्रत समुच्चय पूजन	106
42.	महान् सफलताएँ पाने वाले	109
43.	आध्यात्मिक अनुभवी आचार्य कनकनन्दी को क्यों नहीं समझ पाते अन्य जन	112

स्वधर्म/सुधर्म गीताञ्जली

हे! जिनवाणी-जगकल्याणी

(चाल : दिल दिवाना.....)

हे ! जिनवाणी जगकल्याणी तारो माँ।
अज्ञान तम में, मुझे प्रकाश, दे दो माँ।। (स्थायी)

अनंतों को तारा तुमने अभी तक इस जग में। होऽऽऽ
आगे भी तारोगे अनंतों को इस भव सिन्धु से।
पापी-तापी-संतापी-क्रूर (व्यसनी) जनों कोऽऽऽ।। अज्ञान तम...(1)

कोई भी तेरे सहारे बिन, तरा है न भव से। होऽऽऽ
हर भव्य भगवान् बना है, तुम्हारी कृपा से।
सर्वज्ञ सुता, गणधर की तुम हो माताऽऽऽ।। अज्ञान तम...(2)

सत्य-असत्य व करणीय-अकरणीय ज्ञान (की) दाता। होऽऽऽ
पुण्य-पाप व बंध मोक्ष की, तू माँ ज्ञान की दाता।
आत्मा से परमात्मा बनने की ज्ञान दाताऽऽऽ।। अज्ञान तम...(3)

तेरे अध्ययन मनन चिन्तन, लेखन प्रवचन से। होऽऽऽ
स्व-शुद्ध आत्म तत्त्व को जानूँ, माँ प्रसाद से तेरे।
तेरे अमृतपय पान से, 'कनक' पाये परिनिर्वाणऽऽऽ।। अज्ञान तम...(4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 28.05.2016, मध्याह्न 1.42

स्व-शुद्धात्मा ही स्व-धर्म

(चाल : सायोनारा....., कसमें-वादे.....)

धर्म तो तेरा आत्म स्वभाव, कहाँ जड़/(बाह्य) में तू ढूँढ रहा।
जड़ तो मूर्तिक अचेतन, तू अमूर्तिक चेतन वाला।।

वस्तु स्वभाव धर्म होने से, तेरा धर्म तो चेतनमय।
अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य, उत्तम क्षमादि दश धर्ममय।।

स्व शुद्धात्मा ही तेरा धर्म, उसे प्राप्त करना (ही) है साधना।
व्यवहार रत्नत्रय तेरी साधना, निश्चय रत्नत्रय तेरा साध्य है।।

निश्चय रत्नत्रय तेरा स्वभाव, स्वभाव ही तेरा स्व-धर्म।
व्यवहार रत्नत्रय की साधना से, स्व-स्वरूप को पाना है।।

राग द्वेष मोह काम क्रोध मद, ईर्ष्या तृष्णा वैर-विरोध है।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश द्वंद, आकर्षण-विकर्षण भेदभाव है।।

ये सब ही यथार्थ से अधर्म, तन-मन-इन्द्रिय न तेरा भाव।
इनसे परे तुझे होना है, सच्चिदानंदमय स्वभाव।।

इसी हेतु ही तू करो साधना, ध्यान-अध्ययन से आत्माराधना।
आत्मविशुद्धि व आत्मसंवित्ति से, 'कनक' पाना है स्व-शुद्ध चेतना।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 01.06.2016, मध्याह्न 12.34

आत्मा! तेरी अनंत गाथा

(चाल : यदि भला किसी का....., चाँद सी महबूबा....., आत्मशक्ति.....)

आत्मा! तेरी अनंत गाथा, गणधर भी पूर्ण न जान पाये।
तेरे अनंत गुण-पर्यायों को, अनंत ज्ञानी पूर्ण जान पाये।।

तू हो अनादि-अनंत सत्ता, अनंत भी तेरे गुण पर्याय।
अनंतानंत अनुभाग प्रतिच्छेद, आकाश से भी तू हो विराट/महान्।।

अनादि काल से अनंत पंच परिवर्तन, करते हो संसार मध्य में।
चार गति चौरासी लाख योनियों में, अनंतानंत जन्म मरण में।।

पुद्गल परिवर्तनों में तुमने, विश्व के हर पुद्गल खाया व त्यागा।
क्षेत्र परिवर्तनों में तुमने भी, विश्व के हर प्रदेश में जन्मा (व) मरा।।

काल परिवर्तनों में तुमने भी, भूत के हर समय में जन्मा-मरा।
भव परिवर्तनों में तुमने भी, हर भव में जन्मा व मरा।।

भाव परिवर्तनों में तुमने भी असंख्य, लोक प्रमाण अशुभ भाव किया।
ऐसा ही संसार के हर काम को, अनंतानंत बार किया व भोगा।।

किन्तु स्वयं को तुमने एक बार भी, न जाना न माना व पाया।
जिसके कारण ही उक्त भ्रमण किया, अनंतानंत दुःख को भोगा।।

जब ही तुम स्वयं को जानोगे मानोगे, मैं हूँ सच्चिदानंदमय आत्मा।
उक्त पंच परिवर्तनों से रहित, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय (मैं) आत्मा।।

आत्मविश्वास व ज्ञान सहित होकर, जब आत्मा में करोगे रमण।
राग द्वेष मोह काम क्रोध त्यागकर, करोगे आत्मा का शुद्धिकरण।।

तब ही (तुम) स्वयं अनंतज्ञानी बनोगे, पाओगे अनंतानंत सुख वीर्य।
स्वाधीन स्वावलंबी प्रभु/(विभु) बनोगे, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य ऐसा स्व-भाव।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 13.05.2016, मध्याह्न 2.07

संदर्भ-

ज्ञानी जीव का ऐसा विचार होता है कि मैं एकाकी हूँ, शुद्ध हूँ अर्थात् पर द्रव्य के संबंध से सर्वथा रहित हूँ, दर्शन ज्ञानमयी हूँ और सदा अरूपी हूँ अतः इन सब बाह्य पर द्रव्यों में मेरा परमाणु मात्र भी नहीं है।

अरसमरूपवमगंध अव्वत्तं चेदणागुणमसहं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

शुद्ध जीव तो ऐसा है कि जिस में न रस है, न रूप है, न गंध है और न इन्द्रियों के गोचर ही है। केवल चेतना गुण वाला है शब्द रूप भी नहीं है, जिसका किसी भी चिह्न द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता और जिसका कोई निश्चित आकार भी नहीं है।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो जो भावो।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव।।

जो प्रमत्त और अप्रमत्त इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर केवल ज्ञायक स्वभाव को ग्रहण किये हुए हैं वह शुद्धात्मा है ऐसा शुद्धनय के जानने वाले महापुरुष कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।

जो आत्मा को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष आदि से अनुभव करता है वह द्रव्यश्रुत और भावश्रुतमय द्वादशांग रूप पूर्व जिनशासन कहा है।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।।30।।

Again and again, through delusions, have the bodies of matter been enjoyed and thrown off by me; how can I long for them now that I am endowed with true wisdom; for no one like to eat the leavings.

अनेक बार भावना करने वाला स्वयं आशंका करता है कि यदि कही हुई नीति के अनुसार मुझे भय आदि न होवे तथापि जो जन्म से अपनाई गई थी ऐसी शरीरादि वस्तु में जिसको मैंने भेद-भावना बल से छोड़ दिया है तथापि चिरकाल के अभ्यस्त अभेद संस्कार के कारण पश्चात्ताप करने वाली हो सकती है कि मैंने अपनी इस वस्तु को क्यों छोड़ दिया यहाँ पर स्वयं भावना करने वाला प्रतिबोध को प्राप्त करके सोचता है कि ऐसा नहीं हो सकता है? क्योंकि-

मोह से अविद्या के वश से अनादिकाल से कर्मादि भाव को प्राप्त किये हुए मैंने संसारावस्था में समस्त पुद्गल को पुनः-पुनः ग्रहण करके, अनुभव करके पश्चात् नीरस करके उसे उच्छिष्ट के समान (झूठन) त्याग कर दिया। जिस प्रकार भोजन, गंध, मलादि को स्वयं भोग करके सेवन करके त्याग करने के बाद उसे पुनः स्वीकार नहीं किया जाता, उसी प्रकार मैं अभी विज्ञ होकर तत्त्वज्ञान में परिणत होकर किस प्रकार सांसारिक पौद्गलिक द्रव्य में स्पृहा करूँगा? अर्थात् उसकी कामना करूँगा। अर्थात् किसी भी प्रकार से मैं सांसारिक पुद्गल आदि जनित वस्तु में अभिलाषा नहीं करूँगा। हे वत्स! जब तू मोक्षार्थी हो तब तुम्हें निर्ममत्व की ही भावना भानी चाहिए।

समीक्षा-यह जीव अनादिकाल से द्रव्यादि पंच परिवर्तन रूपी संसार में भ्रमण करता हुआ विश्व के समस्त पुद्गलों को अनंत बार भोजन, पानी, वस्त्र, भोगोपभोग की वस्तु, वायु, शरीर, वचन, मन कर्मादि रूप से ग्रहण किया और त्याग किया। इसी प्रकार क्षेत्र (आकाश-प्रदेश) काल (उत्सर्पणी-अवसर्पणी काल) भव (नरकादि भव) भाव (विभिन्न संकल्प-विकल्प) को भी प्राप्त किया और त्यागा है। इसलिए शरीरादि वस्तु कोई अभूतपूर्व नहीं है। कहा भी है-

संसारो पंच-विहो दव्वे खेत्ते तहेव काले य।
भव-भमणो य चउत्थो पंचमओ भाव-संसारो।। (66)

अर्थ-संसार पाँच प्रकार का होता है-द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भव संसार और भाव संसार।

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्म-पुग्गला विविहा।

णेकम्म-पुग्गला वि य मिच्छत्त-कसाय-संजुत्तो।। (67)

मिथ्यात्व और कषाय से युक्त संसारी जीव प्रतिसमय अनेक प्रकार के कर्म पुद्गलों और नोकर्म पुद्गलों को भी ग्रहण करता और छोड़ता है।

कर्मबंध के पाँच कारण हैं-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, इनमें मिथ्यात्व और कषाय प्रधान हैं, क्योंकि ये मोहनीय कर्म के भेद हैं और सब कर्मों में मोहनीय कर्म ही प्रधान और बलवान् है। उसके अभाव में शेष सभी कर्म केवल निस्तेज ही नहीं हो जाते, किन्तु संसार परिभ्रमण का चक्र ही रुक जाता है। इसीलिए आचार्य ने मिथ्यात्व और कषाय को ही ग्रहण किया है। मिथ्यात्व के पाँच भेद है और कषाय के पच्चीस भेद हैं। इन मिथ्यात्व और कषाय के आधीन हुआ संसारी जीव ज्ञानावरण आदि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है। लोक में सर्वत्र कार्माण वर्गणाएँ भरी हुई हैं, उनमें से अपने योग्य को ही ग्रहण करता है तथा आयुकर्म सर्वदा नहीं बँधता। अतः सात ही कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है और आबाधा काल पूरा हो जाने पर उन्हें भोगकर छोड़ देता है। जैसे प्रतिसमय कर्मरूप होने के योग्य पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करता है वैसे ही औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीनों शरीरों की छह पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गलों को भी प्रतिसमय ग्रहण करता है और छोड़ता है। इस प्रकार जीव प्रतिसमय कर्म पुद्गलों और नोकर्म पुद्गलों को भी ग्रहण करता और छोड़ता है। किसी विवक्षित समय में एक जीव में ज्ञानावरणादि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंध ग्रहण किए और आबाधा काल बीत जाने पर उन्हें भोगकर छोड़ दिया। उसके बाद अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करके अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके और अनंत बार ग्रहीत का ग्रहण करके छोड़ दिया। उसके बाद जब वे ही पुद्गल वैसे ही रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि भावों को लेकर, उसी जीव के वैसे ही परिणामों से पुनः कर्मरूप परिणत होते है। उसे कर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं इसी तरह किसी विवक्षित समय में एक जीव ने तीन शरीरों की छः पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गल ग्रहण किए और भोगकर छोड़ दिए, पूर्वोक्त क्रम के अनुसार जब वे ही नोकर्म पुद्गल उसी रूप रस आदि को लेकर उसी जीव के द्वारा पुनः नोकर्म द्रव्य परिवर्तन को द्रव्य परिवर्तन या द्रव्य संसार कहते हैं। कहा भी है-

सर्वेऽपिपुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवने।
ह्यसकृद्धानन्तकृत्वः पुद्गलपरिवर्तने संसारे।।

पुद्गल परिवर्तन रूप संसार में इस जीव ने सभी पुद्गलों को क्रमशः अनंत बार ग्रहण किया और छोड़ दिया। जो पुद्गल पहले ग्रहण किये हो उन्हें गृहीत कहते हैं। जो पहले ग्रहण न किये हो उन्हें अगृहीत कहते हैं। दोनों के मिलान को मिश्र कहते हैं इनके ग्रहण का क्रम पूर्वोक्त प्रकार है। श्वेताम्बर संप्रदाय में द्रव्य परिवर्तन के दो भेद किये गये हैं-बादर द्रव्य परिवर्तन और सूक्ष्म द्रव्य परिवर्तन। दोनों के स्वरूप में भी अंतर है, जो इस प्रकार है-'जितने समय में एक जीव समस्त परमाणुओं को औदारिक, वैक्रियक, तैजस, भाषा, आनप्राण, मन और कार्माण शरीर रूप परिणमनकर, उन्हें भोगकर छोड़ देता है, उसे बादर द्रव्य परिवर्तन कहते हैं और जितने समय में समस्त परमाणुओं को औदारिक आदि सात वर्गणाओं में से किसी एक वर्गणा रूप परिणमनकर उन्हें भोगकर छोड़ देता है उसे सूक्ष्म द्रव्य परिवर्तन कहते हैं।'

आध्यात्मिक गुरुओं के गुण कीर्तन

(चाल : चंदा मामा....., तुम दिल की.....)

गुरुदेव आप महान् हो...रत्नत्रय की खान हो।
भावी तुम भगवान् हो...जीवन्त धर्म आप हो।।

समता के साधक हो...दश धर्ममय आप हो।
ज्ञान वैराग्य संयुक्त...सम्यक् आचरण युक्त हो।।

भेद विज्ञान युक्त आप...भेद-भाव वियुक्त आप।
आत्म-वैभव लक्ष्य सहित...भौतिक-वैभव रहित।।

आत्मसिद्धि लक्ष्य सहित...ख्याति/(पूजा) प्रसिद्धि रहित।
ज्ञान-विज्ञान सहित आप...विभाव-भाव क्षीण युक्त।।

आत्म-उपलब्धि (एक) ही लक्ष्य...विश्व बंधुत्व भाव युक्त।
मोह माया ममत्व रहित...उदार वात्सल्यता सहित।।

सूर्य समान तेजस्वी हो...शिष्य-कमल विकासी हो।
वज्र समान कठोर हो...सनम्र सत्यग्राही हो।।

सिंह समान निर्भय हो...बैल के समान भद्र हो।
हंस समान गुणग्राही हो...गौसम ज्ञानपय दायी हो।।

ध्यान-अग्नि से सहित हो...चंदन समान शीतल हो।
आकाश सम निर्लिप्त हो...आत्मा स्वभाव में लीन हो।।

अलौकिक वृत्तिधारी हो...लोकज्ञता सहित हो।
आत्मिक गुणों (से) सहित हो...'कनकनन्दी' से वंदित हो।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 02.06.2016, अपराह्न 5.58

(आध्यात्मिक भाषा ज्ञान संबंधी कविता)

मेरा आध्यात्मिक लक्ष्य

(लौकिक से परे व विपरीत भी है आध्यात्मिक)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., आत्मशक्ति.....)

लौकिक परे अलौकिक होना चाहता हूँ...
व्यवहार परे आध्यात्मिक होना चाहता हूँ...
कर्म से कर्मातीत (मैं) होना चाहता हूँ...
अंत/(सीमा) परे अनंत/(सीमातीत) होना चाहता हूँ...(1)...

लौकिक स्वार्थ में होती है लोभ की प्रवृत्ति...
इससे परे स्व-अर्थ/(स्वात्मा) को पाने की प्रवृत्ति...
भौतिक उपार्जन हेतु करते लौकिक (जन) पुरुषार्थ...
इससे परे चाहता हूँ (मैं) आत्मिक पुरुषार्थ...(2)...

संसारी जीव चाहते हैं भौतिक लाभ...
इससे परे चाहता हूँ (मैं) आत्मिक लाभ...
आत्मिक लाभ ही है परम उपलब्धि...
अन्य सभी लाभ तो परिग्रह प्रवृत्ति...(3)...

इन्द्रिय-भोग चाहते हैं रागी व मोही...
इससे परे चाहता हूँ (मैं) आत्मिक भोग...
अनंत सुख का करूँ मैं भोग-उपभोग/(''धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो'' कहते सर्वज्ञ)...
अन्य सभी भोग तो संसार वर्द्धक...(4)...

सांसारिक प्रभु-विभु तो कर्म सापेक्ष...

राग-द्वेष-मोह-घृणा व दुःख कारक...
इससे परे बनना चाहूँ स्व-प्रभु व विभु...
अनंत अक्षय वैभव का बनूँ (मैं) विभु/(प्रभु)...(5)...
भौतिक सत्ता-संपत्ति को मोही मानते महान्...
इससे परे आत्मिक सत्ता से बनूँ महान्...
बहु आरम्भ-परिग्रह से मिलती नरक गति...
आत्मिक सत्ता से मिलती है परम गति/(पञ्चम गति)...(6)...
अज्ञानी-मोही करते आत्मिक गुणों के त्याग/(विकृत)...
मुझे करना है आत्मा के गुणों के भोग...
श्रम करते मोही-रागी भौतिक हेतु...
श्रमण बना हूँ भौतिक परे बनने हेतु...(7)...
लौकिक जन मानते आलसी को निकम्मा...
इससे परे कर्म रहित बनूँ (मैं) निकम्मा...
लोक प्रसिद्धि परे चाहूँ (मैं) आत्म प्रसिद्धि...
आत्मविश्वास चाहूँ (मैं) स्व-शुद्धात्मा रूचि...(8)...
मोही शरीर-मन को मानते मैं/(अहं) स्वरूप...
इससे परे स्व-शुद्धात्मा को (मैं) मानता अहं स्वरूप...
लौकिक से परे होता है आध्यात्मिक...
'कनकनन्दी' का सर्वस्व है आध्यात्मिक...(9)...
विज्ञानी-दार्शनिक-कवि-उद्योगपति...
नेता-कलाकार-स्नातक विद्यार्थी-शोधार्थी...
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ-कर्म, बंध व मुक्ति...
लौकिक से परे इनके अर्थ व उक्ति...(10)...
रागी द्वेषी मोही कामी क्रोधीजन...
आध्यात्म से विपरीत करते मान्य...
करते विपरीत भाव-व्यवहार-कथन...
यथा मद्यपी का होता विपरीत मान्य/(कथन)...(11)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 09.05.2016, रात्रि 11.15 (अक्षय तृतीया)

विश्व में सबसे बड़े 3 दोष/(पाप) व 3 गुण/(धर्म)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

विश्व में सबसे बड़े तीन दोष, कह गये सभी ही तीर्थंकर।
आत्मविश्वास ज्ञान-चारित्र न होना, (तथाहि) तीनों का होना दोष-गुण क्रम से।।

मैं हूँ आत्मा सच्चिदानंदमय, ऐसा जो न करता आत्मविश्वास/(सम्यग्दर्शन)।
वह तो पहला महान् दोष करता, संसार भ्रमण का मूल कारण।।

आत्मविश्वास बिना न होता आत्मज्ञान, आत्मज्ञान बिना न आत्मानुचरण।
यही तीनों महान् दोष है, गुण आत्मविश्वास ज्ञानाचरण।। (1)

बिन आत्मविश्वास होता अंधविश्वास, अष्ट मद सहित होते सप्त भय युक्त।
क्रोध मान माया लोभ अनंतानुबंधी सह, नो कषाय व पन्द्रह प्रमाद सह।।

इसी से न महान् कार्य संपादन होते, ज्ञान आचरण भी होते दूषित।
पंच पाप सप्त व्यसन भी होते, अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार सहित।। (2)

आत्मविश्वास से न होते उक्त दोष, होते आत्मज्ञान व सम्यक् आचरण।
होते आत्मानुशासन व समता शांति, क्षमादि दश धर्म व आत्मविशुद्धि।।

इसी से आत्मा का होता क्रम विकास, कर्मनाश कर बनते शुद्ध-बुद्ध।
अतः तीनों गुण होते सभी से महान्, तीनों गुणों हेतु बना 'कनक' श्रमण।। (3)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दिनांक 20.05.2016, रात्रि 8.45

निश्चय-व्यवहार : वैश्विक-विविध रूप

(व्यवहार को भी नहीं जानते अधिसंख्य जन व निश्चय को जानते विरलतम जन)

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

निश्चय-व्यवहार स्वरूप विविध...निश्चय शुद्ध है व्यवहार अशुद्ध...
निश्चय द्रव्य है व्यवहार पर्याय...निश्चय शुद्धात्मा है व्यवहार लौकिक...

निश्चय प्राप्ति हेतु होता व्यवहार...निश्चय साध्य है साधन व्यवहार...
कर्म निरपेक्ष होता है निश्चय...कर्म सापेक्ष होता है व्यवहार...(1)...

षट् द्रव्य ही होते परम निश्चय...स्वयं हेतु स्व-शुद्धात्मा निश्चय...
मार्गणा-गुणस्थान होते व्यवहार...निश्चय से हर जीव होते शुद्धमय...
असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प...सेवा/(नौकरी) की शिक्षा होती व्यवहार...
इसी में प्रवृत्ति होती व्यवहार...इससे परे आत्मोपलब्धि निश्चय...(2)...

पञ्च समिति होती व्यवहारमय...आत्मा में प्रवृत्ति होती निश्चय...
दान देना होता है व्यवहार से त्याग...अंतर-बहिर ग्रंथी मोचन निश्चय त्याग...
षट् बाह्य तपस्या है व्यवहार तप...षट् अंतरंग तप निश्चय तप...
पर द्रव्य आश्रित व्यवहार धर्म...स्व-शुद्धात्मा आश्रित निश्चय धर्म...(3)...

धार्मिक रीति-रिवाज है व्यवहार धर्म...शुद्धात्म रमण है निश्चय धर्म...
निश्चय धर्म साध्य है व्यवहार साधन...आत्मशुद्धि बिन न व्यवहार मान्य...
लौकिक लेन-देन व मान-सम्मान/(विनय)...रीति-रिवाज-कानून-संविधान...
हित-मित-प्रिय भाव-व्यवहार...इतना ही नहीं है संपूर्ण व्यवहार...(4)...

खान-पीना-सोना व जागना...भोगोपभोग व फैशन-व्यसन...
तन मन धन व ख्याति पूजा लाभ...शत्रु मित्र भाई बंधु व कुटुम्ब...
इससे परे भी है निश्चय-व्यवहार...इसे न जानते अधिसंख्य नारी-नर...
इसके ज्ञानार्थे स्वाध्याय द्रव्य संग्रह/(नयचक्र)...'कनक' क्रिया अत्र संक्षेप से संग्रह...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 21.05.2016, रात्रि 8.50

कितना प्यारा/(न्यारा) द्रव्य है मेरा

(चाल : तुम दिल की.....)

कितना प्यारा/(न्यारा) द्रव्य है मेरा, चैतन्य धातु से निर्मित वाला।
अनंत गुण-पर्याय वाला, स्वयंभू-स्वयंपूर्ण-शाश्वत वाला।। (1)

अनंत ज्ञान दर्शन सुख वाला, राग द्वेष मोह से रहित वाला।
उत्पाद व्यय व ध्रौव्य वाला, तन-मन-इन्द्रिय रहित वाला।। (2)

कर्म से रहित भी संसारी वाला, कर्म रहित भी मुक्त वाला।
अनादि काल से कर्म युक्त, कर्म नाशकर ही बनूँगा मुक्त।। (3)

इसी हेतु चाहिए स्व-शुद्धात्मा श्रद्धा, श्रद्धा सहित प्रज्ञा व चर्या।
इसी हेतु ध्यान-अध्ययन करूँ, मनन-चिन्तन-अनुप्रेक्षा करूँ।। (4)

इसी हेतु ही तप-त्याग करूँ, व्रत-नियम व संयम पालूँ।
एकांत मौन में निवास करूँ, अध्यापन-लेखन-प्रवचन करूँ।। (5)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ, संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ।
ख्याति-पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागूँ, संकीर्ण कट्टरता व द्वंद त्यागूँ।। (6)

अपना-पराया-भेदभाव त्यागूँ, शत्रु-मित्र में राग द्वेष मैं त्यागूँ।
धनी-गरीब में भेदभाव न करूँ, लौकिक-सामाजिक काम न करूँ।। (7)

शोध-बोध व आत्मानुभव करूँ, आत्मविशुद्धि हेतु सब कुछ करूँ।
इसी से विपरीत सब कुछ त्यागूँ, स्व-शुद्धात्मा को 'कनक' मैं चाहूँ।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 19.05.2016, मध्याह्न 2.10

वह आत्म तत्त्व है मेरा...

(चाल : जहाँ डाल-डाल पर.....)

जहाँ प्रदेश-प्रदेश पर अनंत गुण...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...

असंख्य प्रदेश जिस द्रव्य में...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...
जय आत्मन्..शुद्धात्मन्...(स्थायी)...

एक ही गुण में अनंत गुणांश...नित्य करते बसेराऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ...
वह अनंत गुणी वाला है...वह जीव द्रव्य है मेरा...
वह आत्म तत्त्व है मेरा...

जहाँ प्रदेश-प्रदेश पर अनंत गुण...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...
जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(1)...

एक गुण में भी अनंत पर्याय...जहाँ हैं करते बसेराऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ

वह अनंत पर्याय वाला हैं...वह जीव द्रव्य है मेरा...

वह आत्म तत्त्व है मेरा...

असंख्य प्रदेश जिस द्रव्य में...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...

जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(2)...

जहाँ अनंत सुख व ज्ञान दर्शन...नित्य करते बसेराऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ...
ऐसे अनंतानंत गुण वाला...वह जीव द्रव्य है मेरा...

वह आत्म तत्त्व है मेरा...

जहाँ प्रदेश-प्रदेश पर अनंत गुण...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...

जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(3)...

मेरे समान मैं ही हूँ तथाहि...अन्य अनंत जीव द्रव्यऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ
अन्य कोई न मेरे समान...काल हो या आकाश द्रव्य...

धर्म हो या अधर्म द्रव्य...

असंख्य प्रदेश जिस द्रव्य में...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह जीव द्रव्य है मेरा...वह आत्म तत्त्व है मेरा...

जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(4)...

मैं यदि न होऊँगा मेरे लिए...अन्य सभी अकारजऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ
मेरे सद्भाव से अन्य द्रव्य...मेरे लिए होते सहायक...

मेरे होते उपकारक...

जहाँ प्रदेश-प्रदेश पर अनंत गुण...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...

जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(5)...

स्वयं की उपलब्धि हेतु...चक्री भी त्यागते वैभवऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ
इन्द्र भी समर्थ नहीं है...आध्यात्मिक संत ही समर्थ...

निस्पृही संत समर्थ...

असंख्य प्रदेश जिस द्रव्य में...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह जीव द्रव्य है मेरा...वह आत्म तत्त्व है मेरा...
जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(6)...

तेरी उपलब्धि हेतु तेरा...विश्वास व ज्ञान चाहिएऽऽऽ जय हो3ऽऽऽ
आत्म रमण रूपी शुद्ध चारित्र...अन्य सभी त्याग चाहिए...
अंतरंग तप चाहिए...

जहाँ-प्रदेश-प्रदेश पर अनंत गुण...नित्य करते बसेराऽऽऽ
वह आत्म तत्त्व है मेरा...वह जीव द्रव्य है मेरा...
जय आत्मन्...शुद्धात्मन्...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 14.05.2016, मध्याह्न 1.58

परभाव व विभाव त्याग से स्व-आराधना करूँ

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

मेरा ही गुणगाण मैं करता चलूँ...मेरे ही दुर्गुणों को मिटाता चलूँ।
मेरे ही स्वभाव को (मैं) पाता ही चलूँ...पर विभाव को मैं त्यागता चलूँ।।

मेरे तो गुण सच्चिदानंदमय...सत्य-शिव-सुंदर आनंदमय।
अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय...उत्तम क्षमादि दश धर्म रत्नत्रयमय।।

इनका ही गुणगान स्मरण करूँ...मनन-चिंतन व ध्यान भी करूँ।
अध्ययन अनुप्रेक्षा अनुभव करूँ...तन्मय होकर उसमें रमण करूँ।।

इनसे परे सभी पर विभावादि को...जानकर-मानकर मैं त्यागता चलूँ।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ भाव से...हर जीव प्रति यथायोग्य भावना करूँ।।

मेरा ही कर्त्ता-धर्त्ता भोक्ता मैं बनूँ...अन्य सभी के प्रति मैं समता धरूँ।
स्व-पर-विश्व कल्याण की भावना करूँ...स्व-उपकार सह पर उपकार भी करूँ।।

अज्ञानी मोही रागी द्वेषी जीवों से...घृणा न करूँ उनका (भी) मंगल चाहूँ।
उनके हेतु संकल्प-विकल्प (संक्लेश) न करूँ...उनसे भी शिक्षा लेकर दुर्गुण त्यागूँ।।

परभाव विभावों से परे होकर...स्वाभावमय परिणमन सदा मैं करूँ।

यही मेरे धर्म-लक्ष्य व साधना...'कनक' को चाहिए स्वयं की आराधना।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 22.05.2016, मध्याह्न 12.55

मैं व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय रत्नत्रयमय बनूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

धीर-वीर-गंभीर-प्रशांत-प्रसन्न, बनना है सबसे मुझे अति उत्तम।
मैं सच्चिदानंद श्रेष्ठ-जेष्ठ द्रव्य, उसी रूप बनना मेरा कर्त्तव्य।। (ध्रुव)

देव-शास्त्र-गुरु का मैं करूँ श्रद्धान, व्यवहार दृष्टि से मेरा सम्यग्दर्शन।
स्व-शुद्धात्मा का इसी से करूँ श्रद्धान, निश्चय दृष्टि से मेरा सम्यग्दर्शन।।

द्रव्य-तत्त्व-पदार्थों का करूँ मैं ज्ञान, व्यवहार दृष्टि से मेरा सम्यग्ज्ञान।
स्व-शुद्धात्मा का इसी से करूँ मैं ज्ञान, निश्चय दृष्टि से मेरा सम्यग्ज्ञान।। (1)

व्रत नियम समितियों का करूँ मैं पालन, व्यवहार दृष्टि से मेरा सम्यक् आचरण।
स्व-शुद्धात्मा का इसी से करूँ मैं रमण, निश्चय दृष्टि से मेरा सम्यक् आचरण।।

इसी हेतु ही करूँ मैं ध्यान-अध्ययन, मनन चिन्तन व लेखन प्रवचन।
त्याग तप करूँ स्तवन व वंदन, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान व मौन।। (2)

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि विसर्जन, राग द्वेष मोह ईर्ष्या-तृष्णा विसर्जन।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश का त्याग, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा का त्याग।।

इसी से प्राप्त करूँगा मेरा स्वरूप, शुद्ध-बुद्धमय व आनंद स्वरूप।
तब मैं श्रेष्ठ-जेष्ठ बनूँगा पावन, 'कनकनन्दी' का यह लक्ष्य अंतिम।। (3)

'प्रवचनसारं' सम्यग्ज्ञानस्य तस्यैव ज्ञेयभूतपरमात्मादिपदार्थानां तत्साध्यस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य च तथैव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सम्यग्दर्शनस्य तव्दिषयभूताने-कान्तात्मक परमात्मादिद्रव्याणां तेन व्यवहारसम्यक्त्वेन साध्यस्थ निजशुद्धात्मरूचिरूपनिश्चय सम्यक्त्वस्य तथैव च व्रतसमितिगुप्त्याधनुष्ठानरूपस्य सराग चारित्रस्य तेनैव साध्यस्य स्वशुद्धात्मनिश्चलानुभूति रूपस्य वीतरागचारित्रस्य च प्रतिपादकत्वात्प्रवचनसाराभिधेयम्। कथंभूतः स शिष्यजनः? सागारानागारचर्याया युक्तः। अभ्यन्तर रत्नत्रयानुष्ठानमुपादेयं कृत्वा बहिरंग रत्नत्रयानुष्ठानं सागारचर्या श्रावकचर्या। बहिरंगरत्नत्रयाधारेणाभ्यन्तररत्नत्रया-

नुष्ठानमनागारचर्या प्रमत्तसंयतादि-तपोधनचर्येत्यर्थः। (प्रवचनसार)

इस शास्त्र के सारभूत परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है। यह प्रवचनसार नाम का शास्त्र रत्नत्रय का प्रकाशक है। तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उसके विषयभूत अनेक धर्मरूप परमात्मा आदि द्रव्य है-इन्हीं का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्त्व है। इससे साधने योग्य अपने शुद्धात्मा की रूचि रूप निश्चय सम्यग्दर्शन है। जानने योग्य परमात्मा आदि पदार्थों का यथार्थ जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। इससे साधने योग्य निर्विकार स्वसंवेदन या स्वानुभव ज्ञान होना निश्चिय सम्यग्ज्ञान है। व्रत, समिति, गुप्ति आदि का आचरण-पालन-व्यवहार वा सराग चारित्र है, उसी से ही साधने योग्य अपने शुद्धात्मा की निश्चल अनुभूति रूप वीतराग चारित्र या निश्चय सम्यक् चारित्र है। जो कोई शिष्यजन अपने भीतर 'रत्नत्रय ही उपादेय है, इन्हीं का साधन कार्यकारी है' ऐसी रूचि रखकर, बाहरी रत्नत्रय का साधन श्रावक के है, बाहरी रत्नत्रय के आधार से निश्चय रत्नत्रय का अनुष्ठान (साधन) मुनि का आचरण है अर्थात् प्रमत्त गुणस्थानवर्ती आदि तपोधन की चर्या है-जो श्रावक या मुनि इस प्रवचनसार नाम के ग्रंथ को समझता है वह थोड़े ही काल में अपने परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 23.05.2016, मध्याह्न 2.05

लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रमुख तीन कारण

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली.....)

जो जीव यथा करता (है) श्रद्धान, तथाहि करता है वह भी ज्ञान।
ज्ञानानुसार ही करता आचरण, उसी के अनुसार पाता (है) परिणाम।।

सही श्रद्धा से सही ज्ञान होता, अंध श्रद्धा से कुज्ञान पाता।
सही ज्ञान से सही आचरण होता, कुज्ञान से गलत आचरण करता।। (1)

आत्मविश्वास या सत्य विश्वास से, होता है यथार्थ से श्रद्धान।
इसी से विपरीत होता अंध श्रद्धान, जिससे होता है मिथ्याज्ञान।।

आत्मविश्वास सह सम्यग्ज्ञान, इसी से युक्त जो सही आचरण।
इन तीनों से युक्त होता हर काम, इनसे रहित न होता कोई काम।। (2)

इनसे युक्त जो होता है लक्ष्य, उसी को जीव पाता है अवश्य।

तीनों की यथायोग्य होती पूर्णता, तथायोग्य लक्ष्य की होती पूर्णता।।

आत्मा में निहित है अनंत शक्ति, उनमें से प्रमुख ये तीनों शक्ति।
तीनों शक्ति की जागृति द्वारा, जागृत होती है अवशेष शक्ति।। (3)

यथा-यथा शक्तियाँ होती जागृत, तथा-तथा कार्य होते संपादित।
कार्य कारणमय यह है सिद्धांत, कारणों की पूर्ति से कार्य संपादित।।

यथायोग्य बाह्य साधन चाहिए, बाधक कारणों का अभाव चाहिए।
द्रव्य क्षेत्र काल सौभाग्य भी चाहिए, 'कनक' स्व-लक्ष्य को अवश्य पाईए।। (4)

संदर्भ-

(ये छूपे हुए प्रोग्राम ही प्रायः सबसे शक्तिशाली होते हैं। यही वे प्रोग्राम हैं, जो हमारे आत्म सम्मान, हमारे आत्मविश्वास, हमारे नजरिये, हमारे विश्वासों और हमारे ज्यादातर कार्यों को तय करते हैं-शेड हेल्म्सटेटर)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 25.05.2016, मध्याह्न 1.08

माँ जिनवाणी से सुनूँ-मेरी भाव की कहानी

(चाल : माँ मुझे अपने आँचल में छिपा ले.....)

माँ जिनवाणी सुनाओ..मेरी भाव कहानी...
अशुभ-शुभ-शुद्ध की कहानी...
सर्वज्ञदेव ने है जो जानी...(स्थायी)...

वैज्ञानिक फ्रायड व हुंग के परे...भौतिक विज्ञानी मनोविज्ञानी परे...
दार्शनिक-सामाजिक-कानून (लौकिक) परे...
तुम तो कहो मुझे मेरी सच्ची कहानी...मेरी भाव कहानी...
सर्वज्ञदेव...(1)...

जिनवाणी बता रही मेरी भाव कहानी...सुन वत्स ध्यान से भाव की कहानी...
अनादि से रहा है तू अशुभ भावी...
जिससे मिली तुझे अनंत कुगति...तेरी भाव कहानी...
सर्वज्ञदेव...(2)...

स्वयं को न जाना तूने अशुभ भावी...राग द्वेष मोह काम क्रोध परिणामी...
जिससे बांधे तुमने अनंत पाप कर्म...
जिससे भ्रमण किया पञ्च परिवर्तन...तेरी दुःखद कहानी...
सर्वज्ञदेव...(3)...

देव-शास्त्र-गुरु व पञ्चलब्धि पाकर...सम्यग्दृष्टि बना तू आत्म श्रद्धान कर...
तब तेरे भाव में हुआ शुभ परिणाम...
पाप का संवर हुआ पुण्य का आस्रव...तेरी भाव कहानी...
सर्वज्ञदेव...(4)...

ज्ञान हुआ सम्यक् चारित्र भी सम्यक्...क्रोध मान माया लोभ हो रहा क्षीण...
व्रत नियम समिति दशधा धर्म...
मैत्री प्रमोद कारुण्य व माध्यस्थ...शुभ भाव कहानी...
सर्वज्ञदेव...(5)...

ध्यान-अध्ययन-आत्मविशुद्धि द्वारा...घाती कर्म नाशकर पाओगे शुद्ध भाव...
तब तुम पाओगे अनंत ज्ञान दर्शन...
अनंत सुख सहित वीर्य अनंत...(होगी) अवस्था अरिहंत...
सर्वज्ञदेव...(6)...

योग निरोध कर बनोगे शैलेश...अघाती नाशकर बनोगे शुद्ध-बुद्ध...
यही तेरा/(निज) स्वरूप जो चिदानंद...
सत्य शिव सुंदर आनंद कंद...'कनक' (तू) पाये परमानंद...
सर्वज्ञदेव...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 25.05.2016, अपराह्न 6.50

संदर्भ-

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सवदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।।4।।

भावार्थ-आत्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं-बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। उनमें से जब तक प्रत्येक संसारी जीव की अचेतन पुद्गल-पिंडरूप शरीरादि विनाशीक पदार्थों में आत्म-बुद्धि रहती है, या आत्मा जब तक मिथ्यात्व-अवस्था में रहता है तब

तक वह 'बहिरात्मा' कहलाता है। शरीरादि में आत्म बुद्धि का त्याग एवं मिथ्यात्व का विनाश होने पर जब आत्मा सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसे 'अंतरात्मा' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं-उत्तम अंतरात्मा, मध्यम अंतरात्मा और जघन्य अंतरात्मा। अंतरंग-बहिरंग-परिग्रह का त्याग करने वाले, विषय-कषायों को जीतने वाले और शुद्ध उपयोग में लीन होने वाले तत्त्वज्ञानी योगीश्वर 'उत्तम अंतरात्मा' कहलाते हैं, देशव्रत का पालन करने वाले गृहस्थ तथा छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि 'मध्यम अंतरात्मा' कहे जाते हैं और तत्त्वश्रद्धा के साथ व्रतों को न रखने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव 'जघन्य अंतरात्मा' रूप से निर्दिष्ट हैं।

आत्म गुणों के घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्मों का नाश करके आत्मा की अनंत चतुष्टय रूप शक्तियों को पूर्ण विकसित करने वाले 'परमात्मा' कहलाते हैं अथवा आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था को 'परमात्मा' कहते हैं। यदि कोई कहे कि अभव्यों में तो एक बहिरात्मावस्था ही संभव है, फिर सर्व प्राणियों में आत्मा के तीन भेद कैसे बन सकते हैं? यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अभव्य जीवों में भी अंतरात्मावस्था और परमात्मावस्था शक्ति रूप से जरूर है, परन्तु उक्त दोनों अवस्थाओं के व्यक्त होने की उनमें योग्यता नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो अभव्यों में केवल ज्ञानावरणीय कर्म का बंध व्यर्थ ठहरेगा। इसलिये चाहे निकट भव्य हो, दूरान्दूर भव्य हो अथवा अभव्य हो, सबमें तीन प्रकार का आत्मा मौजूद है। सर्वज्ञ में भी भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा घृत-घट के समान बहिरात्मावस्था और अंतरात्मावस्था सिद्ध है।

आत्मा की इन तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धि रूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यक्त्व प्राप्त कर उस विपरीताभिनिवेशमय बहिरात्मावस्था को छोड़ना चाहिए और मोक्षमार्ग की साधक अंतरात्मावस्था में स्थिर होकर आत्मा की स्वाभाविक वीतरागमयी परमात्मावस्था को व्यक्त करने का उपाय करना चाहिए।।4।।

अब बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा में से प्रत्येक का लक्षण कहते हैं-

भावार्थ-मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनेन्द्र देव ने बताया है उसको वैसा न मानने वाला बहिरात्मा अथवा मिथ्यादृष्टि कहलाता है। दर्शन मोह के उदय से जीव में अजीव की कल्पना और अजीव में जीव की कल्पना होती है,

दुखदाई राग द्वेषादिक विभाव भावों को सुखदाई समझ लिया जाता है, आत्मा के हितकारी ज्ञान वैराग्यादि पदार्थों को अहितकारी जानकर उनमें अरूचि अथवा द्वेषरूप प्रवृत्ति होती है और कर्मबंध के शुभाशुभ फलों में राग, द्वेष होने से उन्हें अच्छे-बुरे मान लिया जाता है। साथ ही इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, विषयों की चाहरूप दावानल में जीव दिन-रात जलता रहता है। इसीलिये आत्मा शक्ति को खो देता है और आकुलता रहित मोक्ष सुख के खोजने अथवा प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इस प्रकार जाति तत्त्व और पर्याय तत्त्वों का यथार्थ परिज्ञान न रखने वाला जीव मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। चैतन्य लक्षण वाला जीव है, इससे विपरीत लक्षण वाला अजीव है, आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, अमूर्तिक है और ये शरीरादिक परद्रव्य हैं, पुद्गल के पिंड हैं, विनाशीक हैं, जड़ हैं, मेरे नहीं हैं और न मैं इनका हूँ, ऐसा भेदविज्ञान करने वाला सम्यग्दृष्टि 'अंतरात्मा' कहलाता है। अत्यंत विशुद्ध आत्मा को 'परमात्मा' कहते हैं, परमात्मा के दो भेद हैं-एक सकल परमात्मा और निष्कल परमात्मा। जो चार घातिया कर्ममल से रहित होकर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय रूप अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि रूप बाह्य लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं उन सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा' या 'अरहंत' कहते हैं और जिन्होंने संपूर्ण कर्ममलों का नाश कर दिया है, जो लोक के अग्र भाग में स्थित हैं, निजानंद निर्भर-निजरस का पान किया करते हैं तथा अनंत काल तक आत्मोत्थ स्वाधीन निराकुल सुख का अनुभव करते हैं उन कृत-कृत्यों को 'निष्कल परमात्मा' या 'सिद्ध' कहते हैं।।5।।

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।।6।।

भावार्थ-आत्मा अनंत गुणों का पिंड है। परमात्मा में उन सब गुणों के पूर्ण विकसित होने से परमात्मा के उन गुणों की अपेक्षा अनंत नाम हैं। इसी से परमात्मा को अजर, अमर, अक्षय, अरोग, अभय, अविकार, अज, अकलंक, अशंक, निरंजन, सर्वज्ञ, वीतराग, परम ज्योति, बुद्ध, आनंदकंद, शास्ता और विधाता जैसे नामों से भी उल्लेखित किया जाता है।।6।।

सर्व मनोरथ पूर्ण होने के उपाय

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

सर्व मनोरथ पूर्ण होते आत्मविशुद्धि से, आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त से।
राग द्वेष मोह ईर्ष्या घृणा त्याग से, संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग से।। (1)

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा के त्याग से, सत्य-समता व शांति के मार्ग से।
सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव के सहयोग से, प्रतिबंध कारक कारणों के निवारण से।। (2)

आत्मानुशासन धैर्य व सम चित्त से, बाधा आने पर भी अविचल होने से।
सतत पुरुषार्थ व लक्ष्यनिष्ठ होने से, स्व-अनंत शक्तियों को जागृत करने से।। (3)

तन-मन-अक्ष से केन्द्रीभूत होने से, नकलची-दिखावा-आडम्बर के त्याग से।
कार्य से अनुभव दोषों के त्याग से, निंदा-प्रशंसा से अविचल होने से।। (4)

भौतिक लाभ से ही न होते मनोरथ पूर्ण, भोगोपभोग से भी न होते मनोरथ पूर्ण।
इसी से तृष्णा अतृप्ति भी बढ़ती, संतुष्टि शांति भी पूर्णतः न मिलती।। (5)

आत्मा की उपलब्धि से ही सर्वोदय होता, सर्व मनोरथ भी इसी से पूर्ण होता।
शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय जीव तब होता, आत्मोपलब्धि हेतु 'कनक' पुरुषार्थ करता।। (6)

(विदेशी साहित्य व वैज्ञानिक चैनलों से भी यह कविता प्रभावित है)।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 25.05.2016, रात्रि 9.03

संदर्भ-

विषय विरतिः संगत्यागः कषाय विनिग्रहः
शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः
नियमित मनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता
भवति कृतिनः संसाराब्धे स्तटे निकटे सति।।224।।

भावार्थ-इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन, राग-द्वेष की शांति, यम-नियम, इन्द्रिय दमन, सात तत्त्वों का विचार, तपश्चरण में उद्यम, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, जिन भगवान् में भक्ति और प्राणियों पर दया भाव ये सब गुण उसी पुण्यात्मा जीव के होते हैं जिसके की संसार रूप समुद्र का किनारा निकट में आ चुका है।

यमनियत नितान्तः शान्त बाह्यान्तरात्मा
परिणमित समाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी
विहित हित मिताशी क्लेश जालं समूलं
दहति निहतनिद्रा निश्चिताध्यात्मसारः।।25।।

भावार्थ–जो यम-यावज्जीवन किये गये व्रत तथा नियम में-परिमित काल के लिए धारण किये गये व्रत में-उद्यत है, जिसकी अंतरात्मा (अंतःकरण) बाह्य इन्द्रिय विषयों से निवृत्त हो चुकी है, जो ध्यान में निश्चल रहता है, सब प्राणियों के विषय में दयालु है, आगमोक्त विधि से हितकारक (पथ्य) एवं परिमित भोजन को ग्रहण करने वाला है, निद्रा से रहित है तथा जो अध्यात्म के रहस्य को जान चुका है, ऐसा जीव समस्त क्लेशों के समूह को जड़ मूल से नष्ट कर देता है।

समधिगत समस्ताः सर्वसावद्य दूराः
स्वहित निहित चित्ताः शान्तसर्व प्रचाराः
स्वपर सफल जल्पाः सर्वसंकल्प मुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः।।226।।

भावार्थ–जो समस्त हेय-उपादेय तत्त्व के जानकार हैं, सब प्रकार की पाप क्रियाओं से रहित हैं, आत्महित में मन को लगाकर समस्त इन्द्रिय व्यापार को शांत करने वाले हैं, स्व और पर के लिए हितकर वचन का व्यवहार करते हैं तथा सब संकल्प-विकल्पों से रहित हो चुके हैं; ऐसे वे मुनि यहाँ कैसे मुक्ति के पात्र न होंगे? अवश्य होंगे।

समता तेरी अनंत शक्ति!

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)
समता! तेरी अनंत शक्ति वचने कहि न जाय।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध (घृणा) तुमसे परास्त हो जाय। (ध्रुव)

मोह-क्षोभ से परे तुम में, होती है आत्मा की शक्ति...
आत्मा में है अनंत शक्ति, जिससे तू शक्तिमान्...
जिससे अन्य विकृत शक्तियाँ, तुमसे परास्त हो जाये।। (1)

(यथा) तट स्थित व्यक्ति स्रोत (जल) से, न होता है प्रभावित...

(तथाहि) जो जीव तटस्थ (समता) रहता, विकृतियों से अप्रभावी...
यथा प्रकाश को अंधेरा कभी नहीं कर सकता परास्त।। (2)

अभी तक जो अनंत जीव तुमसे बने अरिहंत...
आगे भी अनंत जीव तुमसे ही बनेंगे शुद्ध-बुद्ध...
आपके बिना अनंत जीव, संसार में (अनंत) दुःख पाये।। (3)

आप में ही गर्भित सभी उत्तम क्षमादि दश धर्म...
रत्नत्रय-पंच महाव्रत-समिति, गुप्ति व शुभ-शुद्ध भाव...
संवर-निर्जरा-मोक्ष की प्राप्ति तुमसे ही संभव।। (4)

आपसे ही संतोष-शांति-तृप्ति की होती उपलब्धि...
तुम्हारे बिना सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि से न मिलती शांति...
तुम्हारे बिना जप-तप-ज्ञान से भी नहीं मिलती है मुक्ति।। (5)

आपसे युक्त अल्प भी जप-तप-ज्ञान देते विपुल फल...
आपसे रहित विपुल भी जप-तप-ज्ञान न देते सुफल...
'कनकनन्दी' भी आपकी शक्ति से पा रहा (है) अनेक सुफल।। (6)

आपके कारण वैर-विरोध संकल्प-विकल्प दूर...
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा-द्वंद-संक्लेश हो जाते दूर...
निन्दा-चुगली मान-अपमान-चिन्तादि हो जाते दूर।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 23.05.2016, रात्रि 10.33
(यह कविता दिनेश चन्द्र शाह के कारण बनी)

संदर्भ-

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं।। (106)

सम्यक्त्व और ज्ञान से संयुक्त राग-द्वेष से रहित चारित्र लब्ध बुद्धि भव्य जीवों के लिए मोक्ष का मार्ग होता है। योगीन्द्र देव ने योगसार में इसी भाव को प्रकट करने वाली एक गाथा कही है-

राय-रोस बे परिहरिवि जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ जो पंचमगइ णेंइ।। (48)

जो राग और द्वेष दोनों को छोड़कर निज आत्मा में वास करता है, उसे ही जिनेन्द्र देव ने धर्म कहा है। वह धर्म पंचम गति (मोक्ष) को ले जाता है।

नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने बृहद् द्रव्यसंग्रह में भी कहा है-

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे।

ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।

मोहक्खोह-विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।। (7)

Verily this realisation is the Dharma, which in turn is pointed out as equanimity and equanimity is the state of the self in which infatuatory perturbation is absent.

प्रयोजन यह है कि शुद्ध चैतन्य के स्वरूप में आचरण करना चारित्र है। यही चारित्र मिथ्यात्व राग-द्वेषादि द्वारा संसरण रूप जो भाव संसार उसमें पड़ते हुए प्राणी का उद्धार करके विकार रहित शुद्ध चैतन्य भाव में धारण करने वाला है, इससे यह चारित्र ही धर्म है। यही धर्म अपने आत्मा की भावना से उत्पन्न जो सुखरूपी अमृत उस रूप शीतल जल के द्वारा काम-क्रोध आदि अग्नि से उत्पन्न संसार के दुःखों की दाह को उपशम करने वाला है, इससे यही सम, शांत भाव या साम्य भाव है। मोह और क्षोभ के ध्वंस करने के कारण से वही शांत भाव मोह क्षोभ रहित, शुद्ध आत्मा का परिणाम कहा जाता है। शुद्ध आत्मा के श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन को नाश करने वाला जो दर्शन मोहनीय कर्म है उसे मोह कहते हैं तथा निर्विकार निश्चल चित्त के वर्तन रूप चारित्र को जो नाश करने वाला है वह चारित्र मोहनीय कर्म या क्षोभ कहलाता है।

समीक्षा-इस गाथा में चारित्र को निश्चय से धर्म कहा गया है। धर्म की विभिन्न परिभाषाओं में से यह एक परिभाषा है। यह परिभाषा विशेषतः जीव के लिए प्रयुक्त की गई है। धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ स्वामी कार्तिकेय ने निम्न प्रकार से की है। यथा-

धम्मो वत्थु सहावो खमादि भावो य दस विहो धम्मो।

रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो।। (475) कार्ति. पृ. 364

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। दस प्रकार के क्षमा आदि भावों को धर्म

कहते हैं। रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और जीवों की रक्षा करने को धर्म कहते हैं।

'धम्मो वत्थु सहावो' यह परिभाषा सार्वभौम परिभाषा है। क्योंकि इसमें समस्त चेतन, अचेतन, मूर्त्त, अमूर्त्त, जंगम-स्थावर द्रव्यों के धर्म समाहित हैं परन्तु यहाँ जीव का मुख्य प्रकरण होने से चारित्र को निश्चय से धर्म कहा गया है क्योंकि रत्नत्रय परम साम्यचारित्र जीव में ही पाया जाता है। कुंदकुंद देव ने अन्यत्र कहा है कि 'दंसण मूलो धम्मो' अर्थात् धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है पर यहाँ कहा है कि धर्म का स्वरूप चारित्र है। इसका रहस्य यह है कि मोक्ष मार्ग का शुभारंभ सम्यग्दर्शन से होता है परन्तु केवल सम्यग्दर्शन से मोक्ष नहीं मिलता है इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान भी धर्म की एक महत्वपूर्ण इकाई है तो भी मात्र सम्यग्ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता है। सम्यग्दर्शन की पूर्णता क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है तथापि वहाँ मोक्ष नहीं हैं। वैसे ही सम्यग्ज्ञान की पूर्णता 13वें गुणस्थान में हो जाती है तथापि वहाँ मोक्ष नहीं है। भले चतुर्थ गुणस्थान में दर्शन मोक्ष है एवम् 13वें गुणस्थान में भावमोक्ष है। जहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है वहाँ सम्यक्चारित्र भजनीय है परन्तु जहाँ सम्यक्चारित्र है वहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अवश्य है। जैसे जिसके पास 1 या 2 रुपये हैं उसके पास 3 रुपये हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते परन्तु जिसके पास 3 रुपये हैं उसके पास 1 और 2 रुपये अवश्य होंगे ही। वैसे चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है परन्तु चरणानुयोग के अनुसार देशचारित्र या सकल चारित्र नहीं है परन्तु सम्यक्चारित्र के धारी अवश्य सम्यक्दृष्टि एवम् सम्यग्ज्ञानी होंगे ही। 13वें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन एवम् सम्यग्ज्ञान की पूर्णता होने पर भी वहाँ परम यथाख्यात चारित्र की पूर्णता नहीं है। अतएव 13वें गुणस्थान में मोक्ष नहीं है। जब 14वें गुणस्थान के अंत में संपूर्ण योगों के अभाव होने से परम यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है तब तत्क्षण ही मोक्ष हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि चारित्र ही निश्चय से जीव का धर्म है, क्योंकि चारित्र जीव का स्वस्वरूप है। इसी ही भाव को आचार्य योगीन्दु देव परमात्मप्रकाश में निम्न प्रकार से प्रगट किया है-

दंसण णाणु चरित्तु तसु जो सम-भाउ करेइ।
इयरहँ एक्कु वि अत्थि णवि जिणवरु एउ भणेइ।। (40)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं, जो यति समभाव करता है, दूसरे स्वभाव रहित जीव के तीन रत्नों में से एक भी नहीं है। इस प्रकार जिनेन्द्र देव

कहते हैं।

राय-दोस बे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।

ते सम-भावि परिट्ठिया लहु णिव्वाणु लहंति।। (100)

जो राग और द्वेष को दूर करके सब जीवों को समान जानते हैं, वे साधु समभाव में विराजमान शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं।

राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ।

सो समाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ।। (100) योगसार पृ. 382

राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो सम भाव होता है, उसे निश्चय से सामायिक समझो। ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।

बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।

णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं।। (46) द्रव्य संग्रह

संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए ज्ञानी जीव के जो बाह्य और अंतरंग क्रियाओं का निरोध है, श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ वह उत्कृष्ट सम्यक् चारित्र है।

चारित्र रूप परिणत आत्मा ही धर्म है

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।

तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।। (8)

For the time being a substance is said to be constituted of that by which it is transformed, therefore the self should be recognised as Dharma, when there is developed the condition of Dharma.

तात्पर्य यह है कि अपने शुद्ध आत्मा के स्वभाव में परिणमन होते हुए जो भाव होता है उसे निश्चय धर्म कहते हैं तथा पंच परमेष्ठी आदि की भक्ति रूपी परिणति या भाव को व्यवहार धर्म कहते हैं। क्योंकि अपनी-अपनी विवक्षित पर्याय से परिणमन करता हुआ द्रव्य उस पर्याय से तन्मय हो जाता है इसलिए पूर्व में कहे हुए निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म से परिणमन करता हुआ आत्मा ही गर्म लोहे के पिंड की तरह अभेद नय से धर्म रूप होता है ऐसा जानना चाहिए। यह भी इसीलिये कि उपादान कारण के सदृश कार्य होता है ऐसा सिद्धांत का वचन है तथा वह उपादान कारण शुद्ध-अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। केवलज्ञान की उत्पत्ति में राग-द्वेषादि रहित स्व-संवेदन ज्ञान तथा आगम की भाषा से शुक्ल-ध्यान शुद्ध उपादान कारण है तथा अशुद्ध

आत्मा रागादि रूप से परिणमन करता हुआ अशुद्ध निश्चय नय से अपने रागादि भावों का अशुद्ध उपादान कारण होता है।

समीक्षा–द्रव्य सत् स्वरूप होने के कारण शाश्वतिक भी है। द्रव्य शाश्वतिक होते हुए भी अपरिणमनशील कूटस्थ नित्य नहीं है परन्तु स्व-स्वभाव त्याग किये बिना ही परिणमन करता है। इसका वर्णन स्वयं ग्रंथकार आगे सविस्तार करेंगे इसलिये इसका वर्णन पाठक आगे देखने का पुरुषार्थ करे। तथापि यहाँ कुछ परिज्ञान के लिए संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं। जब द्रव्य में परिणमन होता है तब वह द्रव्य परिणमन रूप ही होता है। जैसे-

जब पानी बर्फ रूप में परिणमन करता है तब वह पानी बर्फ रूप ही होता है और जब वह पानी वाष्प रूप में परिणमन करता है तब वह वाष्प रूप होता है। इसी प्रकार सुवर्ण जब कुंडल (कर्णफूल) रूप में परिणमन करता है तब स्वर्ण उस समय कुंडल रूप ही है। उस कुंडल को छोड़कर वह सुवर्ण अन्य रूप या अन्यत्र नहीं है। इसी प्रकार जब जीव चारित्र रूप धर्म में परिणमन करता है तब-तब चारित्र रूप में तन्मय हो जाता है। उस समय जीव चारित्र रूप ही है अन्य रूप या अन्यत्र नहीं है। जैसे-

पुद्गल का मूर्तिक गुण पुद्गल में ही है अन्यत्र नहीं वैसे जीव का धर्म जीव में है जीव को छोड़कर अन्यत्र नहीं है। परन्तु जीव अनादिकाल कर्म संतति के कारण वैभाविक परिणमन से स्व-स्वभावों को प्राप्त नहीं कर पाता परन्तु जब वैभाविक भाव को छोड़कर स्व-स्वभाव में परिणमन करता है तब सुप्त रूप में जो स्वधर्म स्वयं में ही गुप्त रूप में था वह प्रगट हो जाता है। इस आशय को नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती ने बृहद् द्रव्यसंग्रह में कहा है-

सम्मद्दसणणाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।। (39) पृ. 128

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यदर्शन सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा।। (40)

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

परमात्म प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है-

देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।

अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम-चित्ति।। (123) पृ. 112

आत्मदेव देवालय में नहीं है पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है, लेप में भी नहीं है, चित्राम की मूर्ति में भी नहीं है। लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं, पंडितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं। सो लौकिक दृष्टांत के लिए दोहा में लेप चित्राम का भी नाम आ गया। वह देव किसी जगह नहीं रहता। वह देव अविनाशी है कर्माञ्जन से रहित है, केवलज्ञानकर पूर्ण है, ऐसा निज परमात्मा समभाव में तिष्ठ रहा है अर्थात् समभाव को परिणत हुए साधुओं के मन में विराज रहा है, अन्य जगह नहीं है।

जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।

ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु।। (12) पृ. 125

जीवों के मोक्ष के कारण उत्कृष्ट दर्शन ज्ञान और चारित्र हैं फिर वे तीनों ही निश्चय कर आत्मा को ही जाने ऐसा श्री वीतराग देव ने कहा है।

पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।

दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि।। (13)

जो अपने से आपको देखता है, जानता है, आचरण करता है वही विवेकी दर्शन ज्ञान चारित्र रूप परिणत हुआ जीव मोक्ष का कारण है।

अप्पा दंसण णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।

अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि।। (81) यो.सा.पृ. 378

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा ही मानो।

रयणत्तय-संजुत्त जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु।

मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु।। (83)

हे योगिन! रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है और वही मोक्ष का कारण है अन्य कुछ मंत्र-तंत्र मोक्ष का कारण नहीं है।

दंसण जं पिच्छियइ बुह अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए सो चारित्त पवित्तु।। (84)

जिसके द्वारा देखा जाता है वह दर्शन है जो निर्मल महान् आत्मा है वह ज्ञान है तथा आत्मा की पुनः-पुनः भावना की जाती है वह पवित्र चारित्र है।

मुझे स्व-अनंत ज्ञान चाहिए

(मेरे लक्ष्य-साधना व उपलब्धि)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छू लेने दो....., जिस देश में तू जिस भेष में तू.....)

वह आत्म ज्ञान मुझे चाहिए...जिस ज्ञान से मैं स्वयं को जानूँ...
जिस ज्ञान से स्वविश्वास करूँ...स्व-विकास हेतु प्रयत्न करूँ...(ध्रुव)...

जिस ज्ञान से मैं पावन बनूँ...सत्य समता शांति को मैं पाऊँ...
निस्पृह निराडम्बर बनकर...स्व-चिन्तन मनन प्रयोग करूँ...

स्व-शोध-बोध व अनुभव...से स्व-अनंत शक्ति को मैं पाऊँ...
इसी हेतु ही मैं स्वाध्याय करूँ...लेखन-प्रवचन-कविता रचूँ...

जिज्ञासा-शिक्षा व सुधार करूँ...परनिन्दा अपमान क्षति न करूँ...
हठाग्रह-पूर्वाग्रह-संकीर्णता परे...स्व-परम तत्त्व (सत्य) अनुभव करूँ...

संकीर्ण पंथ-मत-जाति परे...राष्ट्र-भाषा धनी-गरीब परे...
शत्रु-मित्र काला-गोरा परे...लिंग-डिग्री व प्रसिद्धि सीमा परे...

भौतिक बंधन व लाभ परे...अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा परे...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश परे...बौद्धिक तर्क-वितर्क मत परे...

आत्मविशुद्धि जन्य श्रद्धा-प्रज्ञा से...आत्म संवेदना युक्त अनुभव से...
शुद्ध-बुद्ध व आनंद हेतु...'कनक' चाहे स्व-अनंत ज्ञान...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 30.05.2016, अपराह्न 5.12 से 5.38
(स्वाध्याय में साधु-साध्वी व श्रावक-श्रोताओं की भावना से प्रेरित यह कविता)

मैं स्वयं को ही मनाऊँ अन्य स्वयं माने

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

स्वयं को मनाऊँ मैं स्वयं को मानूँ, स्वयं को जताऊँ मैं स्वयं को जानूँ।
स्व-विश्वास युक्त स्व-सुधार करूँ, स्व को शुद्ध-बुद्ध-आनंद करूँ।।

मैं तो स्वयं को कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता, अन्य का मैं नहीं कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हर द्रव्य में होते, गुण-पर्याय भी स्व-द्रव्य में होते।।

अन्य द्रव्य भले सहकारी निमित्त होते, एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप न होते।
मैं भी अन्य के सहयोग पाकर, बनूँ सत्य-शिव व सुंदर।।

स्वयं को मनाना है सरल व सहज, सुफल मिलता भी है रसाल-अजस्र।
अन्य को मनाना इसी से विपरीत, अतः मैं स्वयं को ही करता हूँ उपकृत।।

स्व-पर-उपकारी भले मैं बनूँ दीपकसम, स्व-उपकार पहले करूँ अन्य के योग्य।
यथा तीर्थंकर स्वयं बनकर सर्वज्ञ, देते विश्व को सत्य-दिव्य ज्ञान।।

अन्य को मनाने का यदि होता है आग्रह, होते है राग-द्वेष व संक्लेश विग्रह।
अन्य के प्रति होते (है) कर्त्ता-धर्त्तापन, स्व कर्त्ता-धर्त्तापन होते है मलीन/(क्षीण)।।

मैं तो अनादि से स्वयं को न मनाया, मनमानी मोहात्मक भाव-काम किया।
इसलिए संसार में पाया अनंत दुःख, 'कनक' स्व को मनाये पाने अनंत सुख।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 31.05.2016, प्रातः 8.15

सरलता (ऋजुता) की अनंत पावन शक्ति

(चाल : गंगा तेरी धारा अमृत....., सायोनारा....., तुम दिल.....)

ऋजुता! तेरी अनंत शक्ति, वचने कही न जाये।
सरल रेखा सम तेरा विस्तार, अनंत तक चला जायऽऽऽ (ध्रुव)

वक्र रेखा सम जो होते कुटील, उनका प्रभाव होता क्षीण।
लंबी वक्र रेखा का विस्तार यथा कम, तथाहि कुटिल न महान्।
सहज-सरल विनम्र (पावन) व्यक्ति ही, यथार्थ से होते महान्ऽऽऽ

ऋजुता...(1)...

धूर्त-पाखण्ड-कुटिल-क्रूर व, स्वार्थी (संकीर्ण) का न होता प्रभाव।
उन्हें न कोई भी अच्छा मानता, न देते सम्मान सहयोग।
उन्हें अप्रामाणिक अयोग्य मानते, अतः करते सभी असहयोगऽऽऽ

ऋजुता...(2)....

सहज-सरल-प्रिय बच्चों को, सभी देते प्रेम व सहयोग।
तथाहि तेरी सरल शक्ति से (भी), होते सभी (जन) प्रभावित।
तीर्थंकर-बुद्ध-संत-सज्जन, अतः तुझे करते स्वीकारऽऽऽ

ऋजुता...(3)....

तेरे बिना न कोई महान् होता, न होता प्रसन्न-प्रभावक।
भावना व काम न होते श्रेष्ठ, न होता विकास व सम्मान।
अतः तेरी अनंत-पावन शक्ति, 'कनकनन्दी' द्वारा वरण्यऽऽऽ

ऋजुता...(4)....

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 30.05.2016, रात्रि 10.24

शिष्य-श्रोता की श्रेष्ठता व कर्त्तव्य

(सर्वज्ञ के अतिरिक्त सभी शिष्य-श्रोता)

(राग : तुम दिल की....., भातुकली.....)

जो सही सुनता वह सही बोल पाता, जो बहरा होता वह गूँगा होता।
सही सुनने वाला ही सही श्रोता होता, श्रद्धा युक्त श्रोता सही श्रावक होता।।

श्रद्धा-विनय-अनुशासन सहित, धर्म श्रवण करने वाला होता शिष्य।
दिव्य ध्वनि सुनते तिर्यंच-मानव-देव, सुदृष्टि से लेकर होते गणधर देव।।

गणधर तक जब होते श्रोता, श्रोता का महत्व स्वयं सिद्ध होता।
सर्वज्ञ अतिरिक्त सभी होते शिष्य, शिष्य का कर्त्तव्य बनना है श्रोता।। (1)

सभी गणधर होते महान् ज्ञानी, चउषट (64) ऋद्धिधारी मनःपर्यय ज्ञानी।
तथापि वे न होते अनंतज्ञानी, अतः वे सुनते सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि।।

अतः सिद्ध होता शिष्यत्व भी महान्, श्रवण करने वाला भी ज्ञानी महान्।
गुरु उपदेश बिना सम्यक्त्व न होता, सम्यग्ज्ञान बिना न सम्यक्त्व होता

/(सम्यग्ज्ञान न होता सम्यक्त्व बिना)।। (2)

एकाग्रतापूर्वक श्रवण करने योग्य, समझ में न आने पर पृच्छना योग्य।
समझ आने पर सहमति प्रगट योग्य, ज्ञान-ज्ञानी विनय व कृतज्ञता योग्य।।

श्रवण-मनन-स्मरण-अनुकरण, अहित त्यजनीय हितकर ग्रहणीय।
श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या वर्द्धनीय, शिष्य से सर्वज्ञ बनना 'कनक' का लक्ष्य।। (3)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 28.05.2016, रात्रि 2.04

संदर्भ-

भव्यः किं कुशलं ममेति विमृशन् दुःखाद् भृशं भीतवान्।
सौख्येषी श्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम।
धर्म शर्मकरं दयागुणमयं युक्त्यागमाभ्यां स्थितं।
गृण्हन् धर्मकथां श्रुतावधिकृतः शास्यो निरस्ताग्रहः।।7।। आत्मानु.

भावार्थ-जो भव्य है; मेरे लिए हितकारक मार्ग कौनसा है, इसका विचार करने वाला है; दुःख से अत्यंत डरा हुआ है, यथार्थ सुख का अभिलाषी है, श्रवण आदि रूप बुद्धि विभव से सम्पन्न है तथा उपदेश को सुनकर और उसके विषय में स्पष्टता से विचार करके जो युक्ति व आगम से सिद्ध ऐसे सुखकारक दयामय धर्म को ग्रहण करने वाला है; ऐसा दुराग्रह से रहित शिष्य धर्मकथा के सुनने में अधिकारी माना गया है।

ऐसा क्यों!?

(रागी-द्वेषी-मोही-कामी-क्रोधी-संकीर्ण स्वार्थी मानव के भाव एवं व्यवहार)

(राग : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

चोरी-बलात्कार-हत्यादि पाप यदि कर सकता है मानव एकला।
दान-दया-परोपकार-धर्मादि क्यों न कर सकता मानव एकला!?

चोरी बलात्कार हत्यादि पाप यदि करता मानव बिना निमंत्रण।
दान-दया-परोपकार-धर्मादि हेतु क्यों आवश्यकता है निमंत्रण!?

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री को यदि कह/(मान) सकता है मानव मेरी।
स्व-आत्मा आत्मशक्ति-उपलब्धियों को, क्यों न कह/(मान) सकता है मानव मेरी!?

सत्ता-संपत्ति आदि भौतिक व पाप कारक में यदि कर सकता है मिथ्या गर्व/(अभिमान)।
स्व-आत्मा व आत्मशक्ति-उपलब्धियों में क्यों न कर सकता है (मानव)
आत्मगौरव!? स्वाभिमान!?

वैज्ञानिक ज्ञान व उपकरणों को हर धर्मावलम्बी करते हैं प्रयोग।
हर धर्म की सच्चाई-अच्छाई को क्यों न कर सकते हैं वे प्रयोग!?

व्यापार व राजनीति आदि में हर धर्मावलंबियों का लेते सहयोग।
शांति समता व समन्वय हेतु हर धर्मावलंबियों का क्यों न लेते सहयोग!?

कृषक मजदूर सेवक आदि से मानव होता है उपकृत व जीवित।
उनका कृतघ्न बनकर मानव उनका क्यों करता शोषण व तिरस्कृत!?

एक जीवन की जीविका हेतु यदि मानव करता विविध काम।
अनंत भविष्यत सुख के हेतु क्यों न कर सकता है आत्मकल्याण!?

भोले-भाले सरल-सहज शांत-संतुष्ट बच्चों को पढ़ाते मानव।
स्वयं दुष्ट-दुर्जन फैशनी-व्यसनी मानव क्यों न करते स्व को सभ्य मानव!?

अन्य को पढ़ते अन्य को देखते अन्य की करते चर्चा व निन्दा।
स्व को न पढ़ते स्व को न देखते स्व को क्यों न करते श्रेष्ठ व जेष्ठ!?

कोई भी पशु-पक्षी नहीं होते हैं मानव सम पापी व अधम।
कीट-पतंग पशु-पक्षी वनस्पति बिना जिन्दा न रह सकते मानव।।

तो भी कृतघ्न व पापी मानव उनका करते शोषण व हनन।
तो भी स्वयं को मानते हैं श्रेष्ठ ऐसे ये अयोग्य मानव।।

विज्ञापन यदि कर सकते हैं लाखों रुपये खर्च करके भी।
भौतिक व अशुद्ध चीज के अथवा अहितकारी हिंसात्मक के भी।।

दूसरों की निन्दा अपमान कारक अथवा वैर-विरोध की बातें भी।
निषेध कारक यदि कर सकते हैं बातें क्यों गलत स्व आत्म चर्चा की।।

रागी-द्वेषी मोही-कामी मानव नहीं जानते हैं आत्म-अनात्मा भी।

सत्य-असत्य नहीं जानते असत्य को ही जानते सत्यमय ही।।

इसलिए वे आध्यात्मिक को, मानते हैं विपरीत व गलत।
तथाहि आध्यात्मिक संत को भी, मानते हैं विपरीत व गलत।।

सत्य-तथ्य को जानो मानव, तथाहि स्वयं को करो महान्।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' समीक्षापूर्ण यह रचा है काव्य।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 31.05.2016, मध्याह्न 1.08

पापात्मक उत्सव/(आनंद)!?

(रागी-द्वेषी-कामी-संकीर्ण-स्वार्थी के पापात्मक उत्सव/(आनंद))

(राग : तुम दिल की....., आत्मशक्ति.....)

लौकिक हो संविधान कानून, परम्परा से जो भी मान्य।
नहीं होते हैं आध्यात्मिक जो, न होते आत्मिक गुण सम्पन्न।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र, आत्मविशुद्धि (आत्म) संवेदना युक्त।
उत्तम क्षमादि दश धर्म युक्त, आत्मा के गुण अनंतानंत।। (1)

आत्मा के गुणों से भिन्न विषय, होते अनात्म भाव-व्यवहार।
नहीं होते आध्यात्मिक ऐसे, कह गये हैं सभी तीर्थंकर।।

असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प, नौकरी विवाह गृह काम।
तन-मन-इन्द्रियाँ राग द्वेष मोह, नहीं है आध्यात्मिक गुण।। (2)

ख्याति पूजा व प्रसिद्धि डिग्री, भोगोपभोग सत्ता संपत्ति।
शत्रु-मित्र व भाई-बंधु-कुटुम्ब, नहीं होते हैं आध्यात्मिक।।

इन सबको स्व मानना मिथ्यात्व, इनकी आसक्ति से बंधता पाप।
आर्त्त-रौद्रध्यान भी होते इनसे, जिससे मिलता आत्मा को संताप।। (3)

मोहासक्त जीव करते विपरीत, आत्मा से भिन्न भाव व्यवहार।
मनाते विवाहादि में उत्सव, किन्तु आत्म शुद्धि में करते निरादर।।

आध्यात्मिकता से न धन्य मानते, भौतिक प्राप्ति से धन्य मानते।
आत्म गौरव को गर्व मानते, भौतिकता से गौरव मानते।। (4)

भौतिक सुख ही सुख मानते, भौतिक दुःख को ही दुःख।
आत्मिक सुख को ही नहीं जानते, नहीं जानते आत्मिक सुख।।

हिंसा असत्य चोरी भोग-उपभोग में मानते आनंद।
यह है रौद्रध्यान हिंसानृतस्तेय-विषय संरक्षण आनंद।। (5)

ऐसा आर्त्तध्यान (में) मनोज्ञ वियोग व अमनोज्ञ संयोग में।
पीड़ा चिन्तन निदान में करते, संकल्प-विकल्प-संक्लेश।।

ऐसे जीव जो उत्सव मनाते वे सभी पाप के उत्सव।
आत्मिक उत्सव को मनावे मानव, इसी हेतु 'कनक' बनाया काव्य।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 31.05.2016, रात्रि 9.15

संदर्भ-

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप एवं शास्त्र विषयक अनुराग होता हैं वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

आर्त्तध्यान का लक्षण एवं भेद

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः। (30)

आर्त्तध्यान Painful concentration of monomonia is of 4 kinds. The first kind of monomonia is अनिष्ट संयोगज onconnection with an unpleasing object to repeatedly think of separation from it.

अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिंता-सातत्य का होना प्रथम आर्त्तध्यान है।

बाधाकारी विष, कण्टक, शत्रु, शास्त्रादि अप्रिय वस्तुएँ अमनोज्ञ कहलाती हैं। जो विष, कण्टक, शत्रु आदि अप्रिय है, उसे बाधा की कारण होने से अमनोज्ञ कहते हैं।

अर्थांतर (दूसरे पदार्थ) की ओर मन को न जाने देकर उसे बार-बार एक ही पदार्थ में लगाये रखना समन्वाहार है। स्मृति का समन्वाहार स्मृति समन्वाहार है। बाधाकारी विष, कण्टक आदि अप्रिय वस्तु का संयोग मिलने पर 'ये मुझसे दूर कैसे हों, इस प्रकार का संकल्प चिंता का प्रबंध आर्त्तध्यान कहा जाता है।

अनादिकालीन मोह एवं अविद्या आदि कुसंस्कार के कारण जीव दूसरे पदार्थों में इष्टानिष्ट आरोप कर लेता है। अनिष्ट संयोग होने पर उनको दूर करने के लिए बार-बार विचार करता है। उसकी ही योजना बनाता है। जब तक अनिष्ट संयोग होता है उसके मन में अनेक संकल्प विकल्प उठते हैं जिससे मन में विकार उत्पन्न होता है एवं विभिन्न मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाता है। इससे अनेक शारीरिक-मानसिक रोग के साथ-साथ पापबंध भी होता है, जैसे-दुर्योधन पाण्डवों को अनिष्ट जानता था और उनको राज्य से निकालने के लिए, मारने के लिए योजना बनाता था। इतना ही नहीं इस अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान के कारण ही महाभारत जैसे जन-धन संहारक महायुद्ध हुआ। परिवार में भी दुष्टा बहु, दुष्टा सास, दुष्टा भाई-बंधु के कारण इस प्रकार का अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान होता है कलह होता है एवं संयुक्त परिवार टुकड़े-टुकड़े में बिखर जाता है। इस ध्यान का वर्णन ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य ने निम्न प्रकार किया है-

ज्वलनवनविषास्त्रव्यालशार्दूलदैत्यैः।
स्थल जलबिल सत्त्वैर्दुर्जनाराति भूपैः।
स्वजन धनशरीर ध्वंसिभिस्तैरनिष्टै-
र्भवति यदिह योगादाद्यमार्तं तदेतत्।।(23) (पृ.416, अ.23)

अपने कुटुम्बी जन, धन-संपत्ति ओर शरीर को नष्ट करने वाले अग्नि, अरण्य (अथवा जल) विष, शस्त्र, सर्प, सिंह व दैत्य और स्थल के प्राणी, जल के प्राणी एवं बिल के प्राणी (सर्पादि) और दुर्जन, शत्रु व राजा इत्यादि; इन अनिष्ट पदार्थों के सम्बन्ध से जो यहाँ संक्लेश और चिंता होती है उसका नाम प्रथम आर्त्तध्यान है।

तथा चरस्थिरैर्भावैरनेकैः समुपस्थितैः।
अनिष्टैर्यन्मनः क्लिष्टं स्यादार्तं तत्प्रकीर्तितम्।।(24)

इसके अतिरिक्त चर (चलते-फिरते) और स्थिर अनेक अनिष्ट पदार्थों के उपस्थित होने पर जो मन में क्लेश उत्पन्न होता है उसे आर्त्तध्यान कहा जाता है।

श्रुतदृष्टैः स्मृतैर्ज्ञातेः प्रत्यासत्तिं च संश्रितैः।
योऽनिष्टार्थैर्मनः क्लेशः पूर्वमार्तं तदिष्यते।।(25)

सुने हुए देखे हुए स्मरण में आये हुए और समीपता को प्राप्त हुए अनिष्ट पदार्थों के निमित्त से जो मन में क्लेश होता है वह प्रथम आर्त्तध्यान माना जाता है।

अशेषानिष्टसंयोगे तद्वियोगानुचिन्तनम्।
यत्स्यात्तदपि तत्त्वज्ञैः पूर्वमार्तं प्रकीर्तितम्।।(26)

समस्त अनिष्ट पदार्थों का संयोग होने पर उनके वियोग के लिए जो चिंता होती है उसे भी तत्त्वज्ञजनों ने प्रथम आर्त्तध्यान कहा है।

विपरीतं मनोज्ञस्य। (31)

The second monomania is its opposite i.e. इष्टवियोगज on beings reparated from a pleasing object to repeatedly thing of reunion with it.

मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत् चिंता करना दूसरा आर्त्तध्यान हैं।

पूर्वकथित से विपर्यय विपरीत कहलाता है। जैसे-मनोज्ञ विषय (प्रिय वस्तु, पुत्र, कलत्र, धनादि) का वियोग हो जाने पर उसके पुनः संयोग के लिए (पुनः प्राप्ति के लिए) जो अत्यधिक चिंताधारा चलती है, मन अन्य पदार्थों में न जाकर बार-बार उसी के चिंतन में लीन रहता है वह भी आर्त्तध्यान है।

मोहनीय कर्म के कारण जीव बाह्य वस्तु के इष्ट एवं मनोज्ञ का आरोप करके उसके प्रति ममत्व करता है। उस वस्तु को वह स्ववस्तु मानता है एवं उसकी सतत् सुरक्षा चाहता है। उसको वह त्यागना नहीं चाहता है। उसका सामीप्य सतत् चाहता है। उसके विरह से वह दुःखी होता है एवं उसको प्राप्त करने के लिए वह सतत् प्रयत्न करता है। जैसे-सीता हरण के बाद क्षायिक सम्यक्दृष्टि, बलभद्र, रामचन्द्र तद्भव मोक्षगामी होते हुए भी सीता के लिए अत्यन्त दुःखी हुए, विक्षुब्ध हुए, उसका ही ध्यान करने लगे। इतना ही नहीं विरह वेदना से इतना विक्षुब्ध हो गये थे कि जिससे वे मानसिक रूप से विकलांग होकर नदी, पर्वत, पेड़, पशु, पक्षी से भी सीता के बारे में पूछताछ करते थे। इसी प्रकार इष्ट पुत्र, मित्र, भाई-बंधु के वियोग से, मरण से जीव इस इष्ट वियोगज आर्त्तध्यान को इतना करता है कि खाना-पीना भूल जाता है, शोक करता है, सिर फोड़ लेता है, यहाँ तक कि कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेता है। परन्तु इस ध्यान से अज्ञानी व्यक्ति यह नहीं जानता है कि मरने के बाद जीव उस पूर्व पर्याय को धारण करके वापस नहीं आता है। वह यह भी नहीं जानता है कि जिसने पुण्य किया वह स्वर्ग आदि उत्तम गति में जाकर सुख भोग रहा है और यहाँ तक कि

वह हम लोग को भूल करके भोग में मस्त हो गया होगा। यदि पाप किया होगा तो दुर्गति में जाकर कष्ट भोगता होगा उस कष्ट के कारण भी हमें भूल गया होगा-यदि भूला नहीं होगा तो भी दुःख करने से उन्हें किसी भी प्रकार का सुख नहीं पहुँच सकता है। केवल दुःख होने पर एवं आर्त्तध्यान करने पर पाप बंध होता है।

ज्ञानार्णव में इस ध्यान का वर्णन इस प्रकार किया है-

राज्यैश्वर्यकलत्रबान्धवसुहृत्सौभाग्यभोगात्यये।

चित्तप्रीतिकरप्रसन्नविषयप्रध्वंसभावेऽथवा।

ससंत्रासभ्रमशोकमोहविवशैर्यत्खिद्यतेऽहर्निशं।

तत्स्यादिष्टवियोगजं तनुभतां ध्यानं कलङ्कास्पदम्।।(29) (पृ.246 स.25)

जो राज्य, ऐश्वर्य, स्त्री, कुटुंब, मित्र, सौभाग्य, भोगादि के नाश होने पर, तथा चित्र को प्रीति उत्पन्न करने वाले सुन्दर इन्द्रियों के विषयों का प्रध्वंसभाव होते हुए, संत्रास, पीड़ा, भ्रम, शोक, मोह के कारण निरंतर खेदरूप होना सो जीवों के इष्ट वियोगजनित आर्त्तध्यान है और यह ध्यान पाप का स्थान है।

दृष्टश्रुतानुभूतैस्तैः पदार्थैश्चित्तरञ्जकैः।

वियोगे यन्मनः खिन्नं स्यादार्त्तं तद्वितीयकम्।।(30)

देखे सुने अनुभवे मन को रंजायमान करने वाले पूर्वोक्त पदार्थों का वियोग होने से जो मन को खेद हो वह भी दूसरा आर्त्तध्यान है।

मनोज्ञवस्तुविध्वंसे पुनस्तत्संगमार्थिभिः।

क्लिश्यते यत्तदेतत्स्याद्वितीयार्त्तस्य लक्षणम्।।(31)

अपने मन की प्यारी वस्तु का विध्वंस होने पर उसकी प्राप्ति के लिए जो क्लेश रूप होना सो दूसरे आर्त्तध्यान का लक्षण है।

वेदनायाश्च। (32)

The third monomania is :

पीड़ाचिन्तवन on being affeicted by a disease or trouble to be repeatedly thinking of becoming free from it.

वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत् चिंता करना तीसरा आर्त्तध्यान है।

प्रकरण से दुःख वेदना का बोध होता है। यद्यपि वेदना शब्द सुख, दुःख के

अनुभव करने के विषय में सामान्य है तथापि यहाँ पर आर्त्तध्यान का प्रकरण होने से दुःख से वेदना का अवबोध होता है। उस वेदना का प्रतिकार करने के लिए तत्पर रहने वाले के धैर्य खोकर निरंतर जो वेदना दूर करने का चिंतन है वह भी आर्त्तध्यान है।

पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय के उदय से तथा अयोग्य आहार, विहार, आचार-विचार व वातावरण से विभिन्न शारीरिक, मानसिक रोग आ घेरते है। उन रोगों के कारण पीड़ा भी होती है। इस पीड़ा के कारण जीव बार-बार विचार करता है कैसे रोग दूर हो, मुझे कभी भी रोग नहीं हो। इसी प्रकार की चिंता से वह मानसिक रूप से और भी अधिक रोगी हो जाता है जिससे वह और भी अधिक शारीरिक और मानसिक रोगी हो जाता है। इतना ही नहीं इस आर्त्तध्यान से पापकर्म का बंध होता है जिससे भविष्यत् काल के लिए भी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोग के कारणभूत बीजों का संचय करता है। अभी मनोविज्ञान में सिद्ध हो गया कि रोग के बारे में चिंता करने से रोग बढ़ता है। रोग के बारे में चिंता न करके सत् साहित्य का अध्ययन, भगवान् का गुणगान, पूजन, स्तवन, ध्यान, प्रशस्त उदात्त मनोभाव से रोग दूर होता है एवं प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। ज्ञानार्णव में इस ध्यान का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

कासश्वासभगन्दरोदरजराकुष्ठातिसारज्वरैः
पितश्लेष्ममरुत्प्रकोप जनितै रोगैः शरीरान्तकैः।
स्यात्सत्त्वप्रबलैः प्रतिक्षण भवैर्यद्याकुलत्वं नृणा
तद्रोगार्त्तमनिन्दितैः प्रकटितं दुर्वारदुःखाकरं।।(32) (पृ.246 स.25)

वातापित्तकफ के प्रकोप से उत्पन्न हुए शरीर को नाश करने वाले वीर्य से प्रबल और क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाले कास, श्वास, भगंदर, जलोदर, जरा, कोढ, अतिसार ज्वरादिक रोगों से मनुष्यों के जो व्याकुलता होती है उसे अनिंदित पुरुषों ने रोगपीड़ा चिन्तवन नामा आर्त्तध्यान कहा है। यह ध्यान दुर्निवार और दुःखों का आकार है, जो कि आगामी काल में पापबंध का कारण है।

स्वल्पानामपि रोगाणां माभूत्स्वप्नेऽपि संभवः।
ममेति या नृणां चिंता स्यादार्त्तं तत्तृतीयकम्।।(33)

जीवों के ऐसी चिंता हो कि मेरे किंचित् भी रोग की उत्पत्ति स्वप्न में भी न हो

ऐसा चिंतवना सो तीसरा आर्त्तध्यान है।

निदानं च। (33)

The fourth monomania is :

निदान On being over anxious to enjoy worldly objects and not getting them in this world to repeatedly think of gaining them in future.

निदान नाम का चौथा आर्त्तध्यान है।

निदान अप्राप्त की प्राप्ति के लिए होता हैं, इसमें पारलौकिक विषय-सुख की गृद्धि से अनागत अर्थ-प्राप्ति के लिए सतत् चिंता चलती रहती है।

ज्ञानार्णव में कहा भी है-

भोगा भोगीन्द्रसेव्यास्त्रिभुवनजयिनी रूपसाम्राज्यलक्ष्मी
राज्यं क्षीणारिचक्रं विजितसुखधूलास्यलीलायुवत्यः
अन्यच्चानन्दभूतं कथमिह भवतीत्यादि चिन्तासुभाजां।
यत्तद्भोगार्यमुक्तं परमगुणधरैर्जन्मसन्तानमूलं।।(34) (ज्ञानार्णवः पृ.247)

धरणीन्द्र के सेवने योग्य तो भोग और तीन भुवन को जीतने वाली रूप साम्राज्य की लक्ष्मी तथा क्षीण हो गये हैं शत्रुओं के समूह जिसमें ऐसा राज्य और देवांगनाओं के नृत्य की लीला को जीतने वाली स्त्री, इत्यादि और भी आनंद रूप वस्तुएँ मेरे कैसे हो इस प्रकार के चिंतवन को परम गुणों को धारण करने वालों ने भोगार्त्त नामा चौथा आर्त्तध्यान कहा है और यह संसार की परिपाटी से हुआ है और संसार का मूल कारण भी है।

पुण्यानुष्ठानजातैरभिलषति पदं यज्जिनेन्द्रामराणाम्
यद्वा तैरेव वांछत्यहितकुलकुजच्छेदमत्यन्तकोपात्।
पूजासत्कारलाभप्रभृतिकमथवा याचते यद्विकल्पैः
स्यादार्त्तं तन्निदानप्रभवमिह नृणां दुःखदावोग्रधाम।।(35)

जो प्राणी पुण्याचरण के समूह से तीर्थ करके अथवा देवों के पद की वांछा करे अथवा उन ही पुण्याचरणों से अत्यन्त कोप के कारण शत्रुसमूहरूपी वृक्षों के उच्छेदने की वांछा करे तथा उन विकल्पों से अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, लाभादिक की याचना करे, उनको निदान जनित आर्त्तध्यान कहते हैं। यह ध्यान भी जीवों की दुःख रूपी अग्नि

का तीव्र स्थान है।

इष्टभोगादिसिद्धयर्थं रिपुघातार्थमेव वा।

यन्निदानं मनुष्याणां स्यादार्त्तं तत्तुरीयकं।।(36)

मनुष्यों के इष्ट भोगादिक की सिद्धि के लिए तथा शत्रु के घात के लिए जो निदान हो, सो चौथा आर्त्तध्यान है।

गुणस्थानों की अपेक्षा आर्त्तध्यान के स्वामी

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्। (34)

That **आर्त्तध्यान** painful concentration is possible only to a man in any of the following stages of spirituality.

गुणस्थान :

अविरत Vowless i.e., in the first 4th stages.

देशविरत With partial vows i.e. in the 5th stages.

प्रमत्तसंयत Monk with some carelessness i.e. in the 6th stages.

यह आर्त्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत जीवों के होता है।

असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यंत, अविरत, संयता-संयत और 15 प्रमाद सहित क्रिया का अनुष्ठान करने वाले प्रमत्तसंयतों के होते हैं।

प्रमत्तसंयतों के प्रमाद के उद्रेक से निदान आर्त्तध्यान को छोड़कर कदाचित् अन्य तीन आर्त्तध्यान होते हैं। क्योंकि निदान शल्य व्रतों के घातक है अर्थात् संयत के निदान नाम का आर्त्तध्यान नहीं हो सकता।

ज्ञानार्णवः में कहा भी है-

इत्थं चतुर्भिः प्रथितैर्विकल्पैरार्तं समासादिह हि प्रणीतम्।

अनन्तजीवाशयभेदभिन्नं ब्रूते समग्रं यदि वीरनाथः।।(35)

(ज्ञानार्णवः पृ.420)

इस प्रकार उक्त चार प्रसिद्ध भेदों के साथ यहाँ संक्षेप से आर्त्तध्यान को निरूपण किया गया है। वैसे जीव अनंत तथा उनके अभिप्राय भी चूँकि अनंत हैं, अतएव उक्त आर्त्तध्यान के भी अनंत भेद हो जाते हैं। उनका यदि पूर्णरूप से कोई निरूपण कर सकता है तो वे वीर जिनेन्द्र ही कर सकते हैं, अन्य कोई छद्मस्थ उसका पूर्णतया निरूपण नहीं कर सकता है।

अपथ्यमपि पर्यन्ते रम्यमप्यग्रिमक्षणे।

विद्धयसद्धयानमेतद्धि षड्गुणस्थानभूमिकम्।।(36)

यह असमीचीन आर्त्तध्यान यद्यपि प्रथम क्षण में रम्य प्रतीत होता है फिर भी वह परिणाम में अहित कारक ही है, यह जान लेना चाहिए। वह प्रथम छह गुणस्थानों में पाया जाता है।

संयतासंयतेष्वेतच्चतुर्भे द प्रजायते।

प्रमत्तसंयतानां तु निदानरहितं त्रिधा।।(37)

वह संयतासंयतों में-प्रथम पाँच गुणस्थानों में-उपर्युक्त चारों भेदों से संयुक्त रहता है। परन्तु प्रमत्तसंयत जीवों के वह निदानभेद से रहित शेष तीन भेदयुक्त पाया जाता है।

कृष्णनीलाद्यसल्लेश्याबलेन प्रविजृम्भते।

इदं दुरितदावार्चिः प्रसूतेरिन्धनोपमम्।।(38)

जिस प्रकार ईंधन दावानल की ज्वाला को विस्तृत करता है, उसी प्रकार यह आर्त्तध्यान पापरूप अग्नि की ज्वाला को विस्तृत करता है। वह कृष्ण और नील आदि अशुभ लेश्या के बल से वृद्धिंगत होता हैं।

एतद्विनापि यत्नेन स्वयमेव प्रसूयते।

अनाद्यसत्समुभ्दूतसंस्कारादेव देहिनाम्।।(39)

यह प्राणियों के बिना प्रयत्न के ही अनादि काल से उत्पन्न हुए दुष्ट संस्कार के वश स्वयं उत्पन्न होता है।

अनन्तदुःखसंकीर्णमस्य तिर्यग्गतिः फलम्।

क्षायोपशमिको भावः कालश्चान्तर्मुहूर्तकः।।(40)

इस ध्यान का फल अनंत दुःखों से व्याप्त तिर्यंच गति की प्राप्ति है। यह क्षायोपशमिक भाव है और काल इसका अंतर्मुहूर्त है।

शङ्काशोकभयप्रमादकलहश्चिन्ताभ्रमोद्भ्रान्तय।

उन्मादो विषयोत्सुकत्वमसकृन्निद्राङ्गजाड्यश्रमाः।

मूर्च्छादीनि शरीरिणामविरतं लिङ्गानि बाह्यान्यल-

मार्ताधिष्ठितचेतसां श्रुतधरैर्व्याविर्णितानि स्फुटम्।।(41)

शंका, शोक, भय, प्रमाद, झगड़ालू वृत्ति, चिन्ता, भ्रान्ति, व्याकुलता, पागलपन,

विषयों की अभिलाषा, निरंतर निद्रा, शरीर की जड़ता, परिश्रम और मूर्च्छा आदि ये उस आर्त्तध्यान से आक्रांत मन वाले प्राणियों के निरंतर बाह्य चिह्न होते हैं जो स्पष्टतया पूर्णश्रुत के धारक गणधरों के द्वारा कहे गये हैं।

रौद्रध्यान के भेद व स्वामी

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः। (35)

रौद्रध्यान Wicked concentration is of 4 kinds.

हिंसानन्द Delight in humtfulness.

अनृतानन्द Delight in falsehoods.

स्तेयानन्द Delight in theft.

विषयसंरक्षानन्द Delight in preservation of objects of sense enjoyments.

This is possible in the Avirata i.e. the first 4 and in deshavrata i.e. the 5th stages.

हिंसा, असत्य, चोरी और विषय संरक्षण के लिए सतत् चिन्ता करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है।

हिंसा, अनृत आदि का निमित्त लेकर ध्यान की धारा चलती है, अतः हिंसादि का हेतु रूप से निर्देश किया है। अर्थात् उक्त लक्षण वाले हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह रौद्रध्यान के निमित्त होते हैं। अतः हिंसादि रौद्रध्यान की उत्पत्ति के कारण हैं।

(1) हिंसानंद-तीव्र कषाय के उदय से हिंसा में आनंद मानना हिंसानंद रौद्रध्यान है। जैसे-विसमार्क-कंस, हिटलर, मुसोलिन, तैमूरलंग आदि तानाशाही राजा हिंसा करके आनंदित होते थे।

हते निष्पीडिते ध्वस्ते जन्तुजाते कदर्थिते।

स्वेन चान्येन यो हर्षस्ताद्धिंसारौद्रमुच्यते।(4) (ज्ञाना.पृ.सं.424)

स्वयं अपने द्वारा अथवा अन्य के द्वारा प्राणी समूह के मारे जाने पर, दबाये जाने पर, नष्ट किये जाने पर अथवा पीड़ित किये जाने पर जो हर्ष हुआ करता है उसे रौद्रध्यान कहते हैं।

संवासः सह निर्दयैरविरतं नैसर्गिकी क्रूरता।

यत्स्याद्देहभृतां तदत्र गदितं रौद्रं प्रशान्ताशयैः।।(6)

प्राणियों के जो हिंसा करने में कुशलता, पाप के उपदेश में अतिशय प्रवीणता, नास्तिक मत के प्रतिपादन में चतुरता, प्रतिदिन प्राण घात में अनुराग, दुष्टजनों के साथ सहवास तथा निरंतर जो स्वाभाविक दुष्टता रहती है उसे यहाँ वीतराग महात्माओं ने रौद्रध्यान कहा है।

गगनवनधरित्रीचारिणां देहभाजां
दलनदहनबन्धच्छेदघातेषु यत्नम्।
दृतिनखकरनेत्रोत्पाटने कौतुकं यत्
तदिह गदितमुच्चैश्चेतसां रौद्रमित्थम्।।(8)

आकाश जल और पृथ्वी के ऊपर संचार करने वाले प्राणियों के पीसने, जलाने, बाँधने, काटने और प्राणघात करने में जो प्रयत्न करता है तथा उनका चमड़ा, नख, हाथ और नेत्रों के उखाड़ने में जो कुतूहल होता है उसे यहाँ मनस्वी जनों ने रौद्रध्यान कहा है।

श्रुते दृष्टि स्मृते जन्तुवधाद्युरूपराभवे।
या मुदस्तद्धि विज्ञेयं रौद्रं दुःखानलेन्धनम्।।(10)

जीवों के वध आदि तथा उनके महान् पराजय के सुनने, देखने अथवा स्मरण होने पर जो हर्ष हुआ करता है उसे रौद्रध्यान जानना चाहिए। वह रौद्रध्यान दुःख रूप अग्नि के बढ़ाने में ईंधन के समान काम करता हैं।

अहं कदा करिष्यामि पूर्ववैरस्य निष्क्रयम्।
अस्य चित्रैर्वधैश्चेति चिन्ता रौद्राय कल्पिता।।(10+1)

इसके अनेक प्रकार के वध के द्वारा में पूर्व वैर का प्रतिकार कब करूँगा, इस प्रकार का चिंतन भी रौद्रध्यान के लिए उसका कारणभूत माना गया है।

किं कुर्मः शक्तिवैकल्याज्जीवन्त्यद्यापि विद्विषः।
तर्ह्यमुत्र हनिष्यामः प्राप्य कालं तथा बलम्।।(10+2)

क्या करे, शक्ति की हीनता से शत्रु आज भी जीवित हैं। यदि वे इस समय नष्ट नहीं किये जा सकते हैं तो मर करके और तब बल को प्राप्त करके उन्हें अगले भव में नष्ट करेंगे, इस प्रकार का जो विचार किया जाता है वह रौद्रध्यान ही है।

हिंसोपकरणादानं क्रूरसत्त्वेष्वनुग्रहम्।
निस्त्रिंशतादिलिङ्गानि रौद्रे बाह्यानि देहिनाम्।।(13)

हिंसा के उपकरणभूत विष शस्त्रादि का ग्रहण करना, दुष्ट जीवों के विषय में उपकार का भाव रखना तथा निर्दयतापूर्ण व्यवहार आदि ये प्राणियों के उस रौद्रध्यान के बाह्य चिह्न है।

इस हिंसानंद के कारण जीव दूसरों को कष्ट देते हैं, दूसरों का घात करते हैं, दूसरे देश पर आक्रमण करते हैं, निरीह पशु, पक्षी का संहार करते हैं, इससे उनको पापबंध होता है, व दुर्गतियाँ प्राप्त होती हैं। इसके कारण विप्लव, आतंकवाद फैलता है, जीवों का हनन होता है, जिससे अनेक जीवों की जाति एवं प्रजाति का लोप होता है। इसके कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है जिससे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूचाल, भूकंप होता है, रोग बढ़ता हैं।

(2) मृषानंद-जिन पर दूसरों का श्रद्धान हो सके ऐसी अपनी बुद्धि के द्वारा कल्पना की हुई युक्तियों के द्वारा दूसरों को ठगने के लिए, झूठ बोलने के संकल्प का बार-बार चिन्तवन करना मृषानंद नाम का दूसरा रौद्रध्यान है।

असत्यकल्पनाजालकश्मलीकृतमानसः।
चेष्टते यज्जनस्ताद्धि मृषारौद्रं प्रकीर्तितम्।।(14)

जिस मनुष्य का हृदय असत्य कल्पनाओं के समूह से मोह को प्राप्त हुआ है वह जो कुछ भी प्रवृत्ति करता है उसे मृषारौद्रध्यान कहा जाता है।

पातयामि जनं मूढं व्यसनेऽनर्थसंकटे।
वाक्कौशल्यप्रयोगेण वाञ्छितार्थप्रसिद्धये।।(19)

मैं अभीष्ट प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए वचन चातुर्य का उपयोग करके मूर्खजन को अनर्थों से भयानक आपत्ति में डालता हूँ, ऐसे चिंतन का नाम मृषानंद रौद्रध्यान है।

इमान जडान्बोधविचारविच्युच्यतान्प्रतारयाम्यद्य वचोभिरुन्नतैः।
अमी प्रवर्त्स्यन्ति मदीयकौशलादकार्यवर्येष्विति नात्र संशयः।।(20)

मैं ज्ञान और विचार से रहित इन मूर्खों को आज अपने उन्नत वचनों के द्वारा ठगता हूँ। ये मेरी चतुराई से महान् अकार्यों में प्रवृत्त होंगे, इसमें संदेह नहीं हैं, ऐसा विचार करना ही रौद्रध्यान है। झूठ बोलकर के झूठ को सही मानना एवं उसमें आनंदित होना मृषानंद का आर्त्तध्यान है।

पुराण प्रसिद्ध सत्यघोष इसके लिए अच्छा उदाहरण है।

असत्य बोलने से असत्य बोलने वालों के ऊपर दूसरों का विश्वास नहीं होता, सत्य छिप जाता है, कलह युद्ध आदि होते हैं। असत्य के कारण न्यायालय में मुकदमे का निर्णय शीघ्र नहीं होता है एवं धन, संपत्ति, समय की बर्बादी होती है।

(3) स्तेयानंद-बलपूर्वक या लोभ के वशवर्ती होकर दूसरे की धन, संपत्ति को हरण करने का बार-बार ध्यान करना स्तेयानंद रौद्रध्यान है। इस ध्यान के कारण जीव चोर बनता है, डकैत बनता है, जेब कटर बनता है। इस ध्यान के कारण ही शक्ति सम्पन्न व्यक्ति राजा, महाराजा दूसरे देश पर आक्रमण करके दूसरे देश की धन, संपत्ति के साथ-साथ देश को ही हड़प लेते हैं। जैसे सिकन्दर को भारतीय एक डाकू ने कहा था कि यदि मैं डाकू हूँ तो तुम महाडाकू हो क्योंकि मैं तो केवल हमारे देश की धन-संपत्ति को हड़पता हूँ परन्तु तुम तो दूसरे देश की संपत्ति व उस देश को ही हड़प लेते हो। ज्ञानार्णव में चौर्यनंदी का वर्णन निम्न प्रकार किया है।

चौर्योपदेशबाहुल्यं चातुर्यं चौर्यकर्मणि।
यच्चौर्यैकरतं चेतस्तच्चौर्यानन्दमिष्यते।।(22)

जो चोरी विषयक उपदेश की अधिकता, चोरी के कार्य में चतुरता और उस चोरी के विषय में जो असाधारण रति होती है उसे चौर्यानंद रौद्रध्यान माना जाता है।

यच्चौर्याय शरीरिणामहरहश्चिन्ता समुत्पद्यते
कृत्वा चौर्यमपि प्रमोदमतुलं कुर्वन्ति यत्संततम्।
चौर्येणापहृते परैः परधने यज्जायते संभ्रम-
स्तच्चौर्यप्रभवं वदन्ति निपुणा रौद्रं सुनिन्दास्पदम्।।(23)

प्राणियों के लिए जो प्रतिदिन चोरी के निमित्त चिंता उत्पन्न होती है, चोरी को करके भी जो निरंतर अनुपम आनंद करते हैं, और जो दूसरों के द्वारा चोरी से हरण किये गये दूसरों के धन के विषय में आदर या उत्सुकता होती है उसे तत्त्वज्ञजन चोरी से उत्पन्न होने वाला (चौर्यानंद) रौद्रध्यान कहते हैं। वह अतिशय निन्दा का कारण है।

कृत्वा सहायं वरवीरसैन्यं तथाभ्युपायांश्च बहुप्रकारान्।
धनान्यलभ्यानि चिरार्जितानि सद्यो हरिष्यामि जनस्य धात्र्याम्।।(24)
द्विपदचतुष्पदसारं धनधान्यवराङ्गनासमाकीर्णम्।
वस्तु परकीयमपि मे स्वाधीनं चौर्यसामर्थ्यात्।।(25)
इत्थं चुरायां विविधप्रकारः शरीरिभिर्यः क्रियतेऽभिलाषः।

अपारदुःखार्णवहेतुभूतं रौद्रं तृतीयं तदिह प्रणीतम्।।(26)

दीर्घकाल से कमाया हुआ जो लोगों का धन पृथ्वी पर सरलता से नहीं प्राप्त किया जा सकता है उसको मैं उत्कृष्ट योद्धाओं की सेना की सहायता से अनेक प्रकार के उपायों को करके शीघ्र ही ग्रहण करूँगा। दुपद और चतुष्पदों में उत्कृष्ट तथा धन, धान्य एवं उत्तम स्त्रियों से व्याप्त जो भी दूसरों की वस्तु है, वह चोरी के बल से मेरे स्वाधीन है-मैं उसे सरलता से प्राप्त कर सकता हूँ। इस प्रकार से प्राणी जो चोरी के विषय में अनेक प्रकार की इच्छा किया करते हैं उसे यहाँ तीसरा रौद्रध्यान कहा गया है और वह अपरिमित दुःख रूप समुद्र का कारणभूत है।

(4) विषयसंरक्षणानंद-लोभ कषाय के तीव्र उदय से तथा तीव्र परिग्रह-संज्ञा के कारण जीव चेतन-अचेतन रूप परिग्रह का संचय करने के लिए जो बार-बार चिन्तवन करता है उसे विषय-संरक्षणानंद (परिग्रह संरक्षणानंद) रौद्रध्यान कहते हैं। पिण्याकगंधक, श्वश्रुनवनीत, आदि व्यक्ति विषयसंरक्षणानंद में प्रसिद्ध हो गये हैं। इस ध्यान के कारण जीव धन-संपत्तियों के लिए चोरी करते हैं, डाका डालते हैं, व्यापार में मिलावट करते हैं, विक्रयकर एवं आयकर की चोरी करते हैं। इस ध्यान के कारण दूसरों का शोषण भी करते हैं, इससे एक व्यक्ति धन्नासेठ, पूँजीपति, मालिक बन जाता है, जिससे समाज में आर्थिक विषमता फैलती है जिससे धनी, गरीब मालिक, मजदूर शोषक-शोषित आदि विषम वर्गों का सूत्रपात होता है जिससे देश में राष्ट्र में अशांति विपल्व, युद्ध, हड़ताल आदि होते है।

ज्ञानार्णव में कहा भी है-

आरोप्य चापं निशितैः शरोधैर्निकृत्य वैरिव्रजमुद्धताशम्।
दग्ध्वा पुरग्रामवराकराणि प्राप्स्येऽहमैश्वर्यमनन्यसाध्यम्।।(28)
आच्छिद्य गृह्णन्ति धरां मदीयां कन्यादिरत्नानि धनानि नारीः।
ये शत्रवः संप्रति लुब्धचित्तास्तेषां करिष्ये कुलकक्षदाहम्।।(29)
सकल भुवन पूज्यं वीर वर्गोपसेव्यं स्वजन धन समृद्धं रत्नरामाभिरामम्।
अमितविभवसारं विश्वभोगाधिपत्यं प्रबलरिपुकुलान्तं हन्त कृत्वा मयाप्तम्।।(30)
भित्त्वा भुवं जन्तुकुलानि हत्वा प्रविश्य दुर्गाण्यटवीं विलङ्घ्य।
कृत्वा पदं मूर्ध्नि मदोद्धतानां मयाधिपत्यं कृतमत्युदारम्।।(31)

जलानलव्यालविषप्रयोगैर्विश्वासभेदप्रणिधिप्रपञ्चैः।
उत्साद्य निःशेषमरातिचक्रं स्फुरत्ययं में प्रबलः प्रतापः।।(32)
इत्यादिसंरक्षणसंनिबद्धं संचिन्तनं यत्क्रियते मनुष्यैः।
संरक्षणानन्दभवं तदेतद्रौद्रं प्रणीतं जगदेकनाथैः।।(33)

विषय संरक्षणानंद रौद्रध्यानी इस प्रकार विचार करता है-मैं धनुष को चढ़ाकर तीक्ष्ण बाण समूह द्वारा अतिशय प्रबल आशा रखने वाले शत्रुओं के समूह को छेद करके और उनके पुर, गाँव व खानों को जला करके जो ऐश्वर्य दूसरों को अलभ्य है उसे प्राप्त करूँगा। जो शत्रु लोभ युक्त मन से मेरी भूमि को आच्छादित करके कन्या आदि रत्नों धन और दिव्य स्त्रियों को ग्रहण करते है, मैं इस समय उनके कुल रूप वन को भस्म करूँगा। हर्ष है कि मैंने अतिशय बलवान् शत्रुओं के समूह को नष्ट करके समस्त संसार से पूजने के योग्य वीर पुरुषों के समूह द्वारा उपभोग करने के योग्य कुटुम्बीजन और धन से वृद्धिंगत, रत्नों व स्त्रियों से रमणीय तथा अपरिमित श्रेष्ठ वैभव से परिपूर्ण, ऐसे समस्त भोगों के स्वामित्व को प्राप्त किया है। मैंने पृथ्वी को भेद करके प्राणी समूहों का घात करके, दुर्गम स्थानों (पर्वतादि) में प्रवेश करके, वन को लाँघ करके और अभिमान में चूर रहने वाले शत्रुओं के सिर पर पाद प्रहार करके महान् स्वामित्व को प्राप्त किया है। जल, अग्नि, सर्प और विष के प्रयोग से तथा विश्वास उत्पन्न कराकर, फूट उत्पन्न कराकर एवं इसी प्रकार की अन्य भी कपटपूर्ण प्रवृत्तियों से समस्त शत्रु समूह को नष्ट कर देने से यह मेरा प्रबल प्रताप प्रगट है। इत्यादि प्रकार से मनुष्य जो विषयसंरक्षण से सम्बन्धित विचार किया करते है उसे लोक के अद्वितीय अधिपति स्वरूप जिनेन्द्र देव ने संरक्षणानंद जन्य रौद्रध्यान कहा है।

हिंसादि के आवेश और परिग्रह आदि के संरक्षण के कारण देशव्रती के भी रौद्रध्यान होता है; कभी-कभी। परन्तु देशव्रत का रौद्रध्यान सम्यक्दर्शन के सामर्थ्य से (सम्यक्दर्शन के साथ होने से) नरक गति आदि का कारण नहीं होता है। संयत के रौद्रध्यान नहीं होता क्योंकि रौद्र भाव में संयम से च्युत हो जाते है। वे हिंसा आदि के आवेश में संयम रह नहीं सकता। क्योंकि जब आत्मा रौद्रध्यान से युक्त होता है तब उसके संयम नहीं रह सकता। ये चारों में ही ध्यान प्रमादाधिष्ठान है अर्थात् प्रमाद भाव इनकी उत्पत्ति में कारण है तथा नरक गति में जाना इस रौद्रध्यान का फल है अर्थात् रौद्रध्यानी नरक में जाता है। जैसे-अग्नि से संतप्त लोह पिण्ड चारों तरफ से जल खींचता है-उसी प्रकार इन आर्त रौद्र रूप अप्रशस्त ध्यानों से परिणत आत्मा चारों ओर से कर्मरूपी जल खींचता है/कार्माण वर्गणाओं को ग्रहण करता है।

संकीर्ण धर्म आदि तोड़े : विज्ञान जोड़े

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

संकीर्ण पंथ मत तोड़ते है...जोड़ता है भौतिक विज्ञान।
पंथ मतवादी परस्पर लड़ते...प्रयोग करते विज्ञान के नियम।।

राष्ट्र-राष्ट्र परस्पर लड़ते...जोड़ते है वैज्ञानिक उपकरण।
यान वाहन फोन टी.वी. द्वारा...जुड़ रहे है पृथ्वी के राष्ट्रगण।।

धार्मिक रीति-रिवाज परम्परा...शब्द चिह्न पर्व उत्सव आदि।
जोड़ते कम है तोड़ते अधिक...विज्ञान के चिह्नादि तो मान्य।। (1)

राजनीति व कानून संविधान...न होते है सभी के मान्य।
किन्तु वैज्ञानिक नियम प्रणाली...करते है अधिक जनमान्य।।

भाषा जाति व काला गोरा से...भेद-भाव है होता अधिक।
इन सब भेद-भाव परे विज्ञान...सभी के हित हेतु करे काम।। (2)

सर्व हितकर धर्म का स्वरूप...मानव ने किया है विकृत।
तथाहि भाषा सम्पर्क सूत्र...सम्पर्क को मानव ने किया विभक्त।।

संकीर्ण-कट्टर व मोही-अज्ञानी...जो होते क्षुद्र मानव गण।
वे ही सभी में करते विकृति...'कनक' को न विकृति मान्य।। (3)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 21.05.2016, रात्रि 11.45

बड़े कट्टर होते है रूढ़िवादी धार्मिक

(चाल : बड़ा नटखट है ये....., छोटी-छोटी गैया.....)

बड़े कट्टर होते हैं रूढ़िवादी धार्मिक, न होता है उनमें विवेक।
हित-अहित को वे न जानते, न जानते सत्य-असत्य।। (1)

विज्ञान को बिन जानकर भी यथा, व्यापारी कमाता है धन।
वैज्ञानिक उपकरण बेचकर तथा, रूढ़िवादी करता है धर्म।। (2)

रूढ़िवादी को तो केवल भौतिकता चाहिए, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि।
ख्याति पूजा लाभ-वर्चस्व चाहिए, चाहिए न आत्मा की विशुद्धि।। (3)

जिस धर्म को वे रूढ़िवादी मानते, उस धर्म की बाह्य क्रिया ही करते।
सत्य-समता शांति रहित, राग द्वेष मोह ईर्ष्या घृणा सहित।। (4)

महान् उद्देश्य व विचार रहित, दान दया सेवा परोपकार रहित।
उदार सहिष्णुता क्षमा धैर्य रहित, होते (वे) संकीर्ण अहंकार सहित।। (5)

सत्य-समता आदि है यथार्थ धर्म, इससे विपरीत भाव व कर्म।
तथापि वे स्वयं को ही धार्मिक मानते, सच्चे धार्मिक से वे घृणा करते।। (6)

सच्चे धार्मिकों का विरोध करके, स्वयं को सच्चे धार्मिक सिद्ध करते।
तो भी सच्चे धार्मिक धर्म को न त्यागते, 'कनक' सच्चे धार्मिक को श्रेष्ठ मानते।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 15.05.2016, मध्याह्न 1.58

भाईचारा (विश्व बंधुत्व) की अयथार्थता व यथार्थता

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

भाई-भाई में न होता सर्वत्र प्रेम/(मैत्री), भाईचारा नहीं है सभी को मान्य।
भाई-भाई में भी होता वैर विरोध, इतिहास पुराण व अभी (भी) प्रसिद्ध।।

भरत-बाहुबली व पाण्डव-कौरव, भाई-भाई में वैरत्व जग प्रसिद्ध।
ऐसा ही होता है अधिसंख्य में, राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न विरल में।।

शार्क के गर्भस्थ भाई-भाई को खाते, तस्मानिया मेमल भाई आजीवन लड़ते।
अधिसंख्य राजकुमार भी वैरत्व करते, सत्ता-संपत्ति-वर्चस्व हेतु लड़ते।।

'स्वजाति परम बैरी' नीति (भी) बताती, परस्पर लड़ते स्वजाति प्राणी।
पशु-पक्षी से लेकर मानव तक में, यह प्रवृत्ति होती प्रायः हर प्राणी में।।

जब तक भाव में न होती उदारता, समता सहिष्णुता व सत्यनिष्ठता।
मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ, तब तक न संभव है विश्व बंधुत्व।।

केवल कानून राजनीति संविधान, सामाजिक नियम भौतिक विनिमय।
इसी से न होता पूर्ण विश्व बंधुत्व, 'कनक' चाहे सभी में विश्व बंधुत्व।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 22.05.2016, अपराह्न 5.50

मद्यपी-उत्पादक-सरकार-विक्रेता आदि अपराधी

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

सुनो! सुनो! हे! भारतवासी, मद्य व्यसन की दुष्प्रवृत्ति।
दीपक नीचे अंधेरे सम, महान् देश की नीच प्रवृत्ति।। (1)
हर धर्म में निषेध मद्य का, तथापि सेवन करते नीच मानव।
प्रसिद्ध यदुवंश नाश के कारण, मद्य बना है पुराण में वर्णन।। (2)
सड़ा-गलाकर चावल गुड़ व, अंगूर महुआ से बनाते मद्य।
असंख्य (त्रस) जीव इसी क्रिया में मरते, असंख्य जीव के निवास मद्य।। (3)
मद्य सेवन से होता मोहित मन, इसलिए इसका नाम है मद्य।
मोहित मन होकर के मानव, करते क्रोध मान व गलत काम।। (4)
हिताहित विवेक भी खोकर कहते, कुवचन व करते कुकर्म।
लड़ाई झगड़ा मारपीट करते, हत्या बलात्कार निषेध काम।। (5)
सड़क दुर्घटना भी अधिक करते, अनेक रोग से अधिक मरते।
छियानवे (96) मिनट में एक मरता, एक दिन में (भारत में) पंद्रह मरते।। (6)
ग्यारह प्रतिशत (11%) भारतवासी, मद्य व्यसन के होते गुलाम।
तम्बाखू गांजा अफीम हेरोइन, बिड़ी सिगरेट के अधिक गुलाम।। (7)
इनके उत्पादक क्रय-विक्रेता, इन सबके लिए भी होते दोषी।
व्यक्ति से लेकर कंपनी सरकार, होते हैं पापी जघन्य अपराधी।। (8)
धन के लिए करते ये काम, (किन्तु) अधिक धन-जन होते बर्बाद।
दुर्घटना रोग मृत्यु आदि से, होती जो क्षति (धन) लाभ भी अलाभ।। (9)
कैसी यह लोकतंत्र सरकार भी, लोगों के नाश हेतु काम करती।
मद्य बेचकर धन प्राप्त कर, रोग दुर्घटना मृत्यु को देती।। (10)
ऐसे लोग व सरकार तक भी, धर्म व लोकतंत्र के अपराधी।
इन्हें कोई दण्ड दे या न दे, पाप कर्म दण्ड देता अवश्य।। (11)
ये सभी तो असभ्य-बर्बर, चोर डकैत व रोग-मृत्यु-दाता।
इन सब दोषों से दूर हेतु, 'कनकनन्दी' रची यह कविता।। (12)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.05.2016, रात्रि 9.05

अर्थ उपार्जक सभी कर्म है लौकिक व पापकारक

(अर्थ उपार्जक शिक्षा-रक्षा-कृषि-व्यापार-शिल्प-नौकरी सभी लौकिक व पापकारक)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

असि मसि कृषि व वाणिज्य शिल्प,
सेवा-नौकरी होते हैं लौकिक ज्ञान/(शिक्षा)/(सावद्य कर्म)।

इसी से परे होता (है) अलौकिक ज्ञान/(शिक्षा, काम),
जो केवल आत्म कल्याणक काम।। (ध्रुव पद)

राजा अवस्था में ऋषभदेव ने बताया, जीविका निर्वाह हेतु सभी षट कर्म।
सर्वज्ञ होने के बाद उन्होंने बताया, आत्मकल्याण हेतु मोक्ष का मार्ग।।

कृषि करना भी है लौकिक कर्म, जिससे होता है आरंभ-परिग्रह।
इसी से होता है अवश्य पापबंध, सर्वज्ञ देव ने बताया सावद्य कर्म।। (1)

लौकिक विद्या अध्ययन होता मसि कर्म, शिक्षक क्लर्क व ऑफिसर प्रोफेसर।
वकील न्यायाधीश वैज्ञानिक आदि, अर्थ उपार्जक (लेखक) सभी मसिकर्मकार।।

रक्षाकर्मी से लेकर सैनिक तक, अस्त्र-शस्त्र द्वारा अर्थ उपार्जक लोग।
असिकर्म कार सभी शस्त्रोपोजीवी, असि मसिकर्म भी है पाप बंधक।। (2)

वाणिज्य करना भी लौकिक कर्म, सोना चाँदी वस्त्रादि व्यापार कर्म।
इसी से भी होता पाप अवश्य बंध, आरंभ-परिग्रह से पाप का बंध।।

बढ़ई कुमार व लोहार सोनार, गृह मंदिर मूर्ति निर्माण कर्म।
चित्र कला संगीत नृत्य वाद्य बजाना, शिल्प कला से भी है पाप का बंध।। (3)

अर्थ उपार्जनकारी सभी सेवा काम से, पापबंध होता है सभी नौकरी से।
घरेलू नौकर से लेकर सरकारी नौकर, लौकिक सेवा से जीविका उपार्जक।।

तथाहि सत्ता संपत्ति व प्रसिद्धि, भोगोपभोग व मंत्र-यंत्र व तंत्र।
ख्याति पूजा लाभ राग द्वेष मोहसह, होते अनात्म व पाप बंध कारक।। (4)

इसी से परे आत्म कल्याण कर काम, स्वाध्याय ज्ञानदान व ज्ञान प्रचार।
अर्थ उपार्जन रिक्त जो लेखन कर्म, नहीं होते लौकिक ये (तो) आत्मिक कर्म।।

धर्म रक्षा करना या वैयावृत्ति करना, ये कर्म अलौकिक आत्म कल्याण कर्म।
इसी से होता पाप नाश व पुण्य कारक, परंपरा से ये सभी मोक्ष कारक।। (5)

ऐसा ही श्रावक व श्रमण के धार्मिक कर्म, पापनाशक व पुण्य बंध के कर्म।
दान दया सेवा स्वाध्याय ध्यान, तप त्याग वैयावृत्ति धार्मिक कर्म।।

गृहस्थ तीर्थंकरों को भी होता है पापबंध, मोक्ष प्राप्ति हेतु करते गृहस्थी त्याग।
श्रमण बनकर करते आत्म कल्याण, 'कनक' श्रमण बना करने आत्म कल्याण।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 15.05.2016, रात्रि 1.25

संदर्भ-

यो लौकिक मायाञ्जनरसादिग्विजयमन्त्रादिसिद्धविलक्षणः स्वशुद्धात्मोपलम्भ लक्षण टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभादो ज्ञानावरणहाष्ट विधकर्मरहिततत्वेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भू तानन्तगुणसहित सिद्धो भगवान् स चैव शुद्धः।

जो शुद्धोपयोगी है वही लौकिक माया अंजन रस, दिग्विजय, मंत्र, यंत्र आदि सिद्धियों से विलक्षण, अपने शुद्ध आत्मा की प्राप्ति रूप टाँकी से उकेरे के समान मात्र ज्ञायक एक स्वभाव रूप तथा ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों से रहित होने के कारण से सम्यक्त्व आदि आठ गुणों में गर्भित अनंत गुण सहित सिद्ध भगवान् हो जाते है। (प्रवचनसार)

सद्-गृहस्थों का पवित्र, श्रेष्ट कर्त्तव्य है कि ऐसे धर्मात्मा साधु पुरुषों को शुद्ध आहार दान दें, उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख-शांति फैलेगी।

दानं दुर्गति नाशाय शीलं सद्गति कारणं।
तपः कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी।।

दान से दुर्गति नाश होती है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्थ भूषणम्।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम्।।

हस्त का भूषण सोने का कड़ादि नहीं है परन्तु दूसरों को दान देना ही भूषण है। कंठ का भूषण रत्नादि हार नहीं है परन्तु सत्य बोलना भूषण है। कान का भूषण

कुंडलादि नहीं हैं परन्तु साधुओं का आत्म उद्धारक उपदेश सुनना भूषण है। इसी प्रकार जो इन भूषणों से अलंकृत है उसको भौतिक भार स्वरूप भूषण से क्या प्रयोजन है?

गजतुरंगसहस्त्रं गोकुलं भूमि दानम्।
कनकरजतपात्रं मेदीनी सागरान्तं।।
सुरयुवती समानं कोटिकन्या प्रदानम्।
नहि भवति समानं ह्यन्नदानं प्रधानं।।

हजारों हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, स्वर्ण-पात्र, रजत-पात्र, सागर पर्यंत पृथ्वी, अप्सरा के समान सुंदरी कोटि कन्या प्रदान करना भी अन्न दान के समान नहीं है। अन्न-दान प्रधान दान है क्योंकि भोजन से क्षुधा रोग मिटता है जिससे निराकुल रूप से धर्म साधना होती है, जिससे शाश्वतिक सुख मिलता है, शांति मिलती है।

सत्पात्र दानेन भवेद्धनाढ्यो धन प्रकर्षेण करोति पुण्यम्।
पुण्याधिकारी दिवि देवराजः पुनर्धनाढ्यः पुनरेव त्यागी।।

सत पात्र दान से पुण्य संचय होता है। पुण्य के प्रभाव से धनी बनता है, धन बढ़ने से पुनः दानादि करके पुण्य कार्य करता है जिससे सातिशय पुण्य होता है, जिससे स्वर्ग में देवराज इन्द्र बनता है। स्वर्ग से च्युत होकर पुनः वैभवशाली धर्मात्मा मनुष्य बनता है। यहाँ पर पुनः त्याग करता है।

दिण्णई सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।। (16) (रयणसार)

उत्तम साधु पुरुष को दान देने से नियम से भोग एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा क्रम से निर्वाण सुख भी मिलता है ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान् ने दिव्य संदेश दिया है।

जो मुणि भुत्तवसेसं भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठं।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाणवरसोक्खं।। (22) (रयणसार)

जो मुनिश्वरों को आहार दान देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करता है वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहारदान देकर उसके पश्चात् ही

सद्गृहस्थ भोजन करता है। गाँव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वार प्रेक्षण करना चाहिए अर्थात् कहीं से आ रहे हैं या नहीं इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन देना चाहिए।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथिनां प्रतिपूजा रूधिरमलं धावते वारि।। (14) (रत्न. श्रा.)

गृहस्थ के गृह संबंधी आरंभ, कृषि, व्यापार, भोजनादि बनाने से जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है उस कलंक को धोने के लिए गृहत्यागी अतिथि मुनियों को आदरपूर्वक दान देने से वे कर्म धुल जाते हैं, जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पानी से धोने से स्वच्छ हो जाता है।

न वे कदरिया देव लोकं वृजन्ति, बालाह वे न पसंसन्ति दानम्।
धीरोव दान अनुमोद मानो, तेनेव सो होंति सुखी परत्र। (धम्मपद, बौद्ध)

कंजूस आदमी देवलोक में नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं। दान से ही मनुष्य लोक-परलोक में सुखी होता है।

जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

जैन धर्म की विशिष्टता जानो, अहं (मैं) ही सर्वोत्तम विशिष्ट मानो।
अहं (मैं) ही कर्त्ता-धर्त्ता व भोक्ता, संसार अवस्था से लेकर मुक्त अवस्था।। (1)

नवकोटि से जीव (स्वयं) करे परिणमन, तदनुकूल जीव (स्वयं) बांधता कर्म।
कर्मानुसार जीव करे (स्वयं) संसार भ्रमण, संसार मध्य में (स्वयं) पंच परिवर्तन।। (2)

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर, सद्गुरु उपदेश रूपी निमित्त पाकर।
करता श्रद्धान व ज्ञान आचरण, अशुभ से शुभ में (स्वयं) करे परिणमन।। (3)

पंच पाप सप्त व्यसनों को त्यागता, पंचाणुव्रत व सेवादानादि देता।
ज्ञान वैराग्य आदि को स्वयं बढ़ाता, भाव विशुद्धि से (स्वयं) श्रमण बनता।। (4)

स्व-अध्ययन हेतु स्वाध्याय करता, तन-मन-इन्द्रियों को संयम करता।
आत्म विश्लेषण से आत्मविशुद्धि करता, अनुप्रेक्षा ध्यान से स्वयं को पावन करता।। (5)

पर संकल्प-विकल्पों को त्याग करता, आर्त्त-रौद्र ध्यान को त्याग करता।
शुभ को बढ़ाते हुए शुद्ध भी बनता, स्वयं में ही स्वयं लीन होता जाता।। (6)
घाती नाशकर अरिहंत बनता, अघाती नाशकर सिद्ध भी बनता।
सभी अवस्था में जीव प्रमुख होता, स्व (स्वयं) का कर्त्ता-भोक्ता 'कनक' ही होता।। (7)

संदर्भ-

स्वस्थ्य-मुक्ति के लिए बाह्यासक्ति त्याग

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः-भवामि तेषां न कदाचनाह्य।
इत्थं विनिश्चत्य विमुच्य बाह्यं-स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै।। (24)

"No external objects are mine, May I never be theirs" Determine this and break connection with the external, and O good friend! if thou wishest to secure Deliverance; be always centred in Thy-self.

भावार्थ-हे भद्र! कोई भी बाह्य पदार्थ मेरे नहीं हैं, मैं कभी भी उनका नहीं हूँ इस प्रकार सुनिश्चित करके मुक्ति के लिए बाह्य को छोड़कर तुम सदा स्वयं में स्थिर हो जाओ।

प्राप्त शिक्षाएँ-मोह ममत्व आसक्ति के कारण जीव जिसके प्रति मोहादि है उसके प्रति आकर्षित होता है, उसके ममत्व में बंध जाता है, उसके संयोग से आसक्ति होती है वियोग से दुःख होता है। इस प्रकार ममत्व से संयोग-वियोग संबंधी आर्त-रौद्र ध्यान होता है, जिससे भाव की अस्थिरता-मलिनता होती है जिससे समाधि संभव ही नहीं है। अतः समाधि के लिए निर्मोही, साम्यभावी एकाग्रमना होना चाहिए।

आत्मलीनता से समाधि

आत्मानमात्मन्यवलोकमानः-त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र-स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम्।। (25)

Thou, who seest thyself in thyself, are pure and possesses of sight and wisdom, A sage who contemplates his mind, at tains communion howsoever situated.

भावार्थ-जो साधु साधक स्वयं को विशुद्ध ज्ञान दर्शनमय स्वरूप निश्चय कर

स्वात्म में आत्मा को अवलोकन करते हुए निश्चय से यत्र-तत्र भी एका चित्त वाला होता है वह समाधि को प्राप्त करता है।

प्राप्त शिक्षाएँ-स्व-आत्मा में लीन होना ही यथार्थ से समाधि है। स्व-शुद्धात्मा का स्वरूप विशुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि अनंत गुणधर्मादिमय है। अतः जहाँ भी जब भी स्व-आत्मा के द्वारा आत्मा में एकाग्र/स्थिर/लीन होना ही समाधि है। इस समाधि के द्वारा ही समस्त कर्म तथा कर्मजनित अवस्थाएँ तथा दुःखों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त किया जाता है। आध्यात्मिक मनोविज्ञान (इष्टोपदेश) में आचार्य पूज्यपाद ने कहा भी है-

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्, मानापमानसमतां स्वमताद् वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा, मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।। (51)

The wise Bhavya who has well understood the teaching of the "Istopdesha" and who maintains the serenity of the mind by the effort of his well when he is respected as well as when disrespect is shown to him, and who has tred himself from the attachment to the non-self, obtains the matchless treasure of Moksha, whether he live in a city or in a trust!

इष्ट अर्थात्, अभिप्रेत जो सुख उसको कारणभूत जो मोक्ष है उसके उपाय होने के कारण स्व-आत्मा का ध्यान उसका यथावत् कथन इस इष्टोपदेश शास्त्र से सम्यक् रूप से अर्थात् व्यवहार निश्चय रूप से अध्ययन करके, चिन्तवन करके धीमान् हिताहित परीक्षा में दक्ष भव्य अर्थात् जो अनंत ज्ञानादि आविर्भाव करने के लिए समर्थ ऐसा जीव निरूपम अनंत ज्ञानादि संपत्ति स्वरूप मुक्तिश्री को प्राप्त करता है ऐसी मुक्तिश्री को प्राप्त करने वाले भव्य आग्रह से रहित होकर ग्रामादि में या वन में विधिपूर्वक निवास करता हुआ मान-अपमान में समता रखता है, राग और द्वेष से दूर रहता है। अर्थात् जो इष्टोपदेश ग्रंथ को अध्ययन चिन्तन करके आत्मज्ञान को प्राप्त करके समस्त आग्रहों को त्यागकर वन या नगर में निवास करते हुए समस्त मान-अपमान में समता रखता हुआ राग-द्वेष से रहित होता हुआ मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

अतः हे आत्मन्! ''**वन्दे तद्गुण लब्धये**'' के अनुसार तुम्हारी पञ्च परमेष्ठी में जो पूजा/भक्ति/प्रार्थना तब यथार्थ होगी जब तुम उनके गुणों को स्वीकार करोगे

क्योंकि गुणानुस्मरण, गुणानुवादन तथा गुणानुकरण ही यथार्थ भक्ति है, सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। अतः हे आत्मन्!

आदहिदं कादव्वं यदि चेत् पर हिदं कादव्वं,
आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुट्ठू कादव्वं।
उत्तमा स्वात्म चिंतास्यान्मोह चिन्ता च मध्यमा,
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिंताऽधमाधमा।।

अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्व-उपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपञ्च, ढोंग-पाखण्ड, संक्लेश त्याग करो।

स्वकृत कर्म ही शुभाशुभ

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा-फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं-स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। (30)

What ever karmas you have performed previously, you experience their fruits, whether good or evil. If what you experience is caused by another, then the karmas you have performed will clearly be of no effect.

भावार्थ-स्वयं के द्वारा पूर्व में उपार्जित शुभाशुभ कर्म के फल स्वरूप सुख-दुःख को जीव अनुभव करता है। यदि अन्य के द्वारा दिये गये कर्म तथा कर्मफल स्वरूप सुख-दुःख को जीव भोगता है तो स्वयं के द्वारा उपार्जित कर्म निरर्थक हो जाएगा।

प्राप्त शिक्षाएँ-''**कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि, फलहुँ तस चाखा**'' के नियमानुसार प्रत्येक जीव स्व-स्व उपार्जित शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार सुख-दुःख स्वरूप फल को भोगता है। जैसा कि जो पानी को पीता है उसकी प्यास बुझती है न कि दूसरों की प्यास बुझती है; जो भोजन करता है उसकी भूख शांत होती है, दूसरों की नहीं, जो विष पीता है उसकी मृत्यु होती है अन्य की नहीं, वैसा ही जो शुभ-अशुभ परिणाम करता है उसके अनुसार उसके आत्म प्रदेश में जो कर्म परमाणु पुण्य-पाप रूप में बंधते हैं वे ही कर्म योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार जन्म-मरण, गति, आयु, शरीर, परिवार, भाव, व्यवहार, सहयोगी, साधन

आदि की उपलब्धि होती है, सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि मिलते हैं। जैसा कि द्रव्य-क्षेत्र-कालादि के निमित्त को प्राप्त करके नीम, बबूल, आम, नारियल, गेहूँ, धान, चना आदि के बीज से जो वृक्ष बनेंगे उस बीज के अनुसार ही फल-बीज उत्पन्न करेंगे, अन्य बीज के अनुसार वैसा ही कर्मानुसार ही जीवों को सुख-दुःखादि मिलता है भले बाह्य निमित्त सहयोगी बनता है न कि प्रमुख कारण।

स्व-कर्म फल चिन्तन से साम्यभाव

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनोन कोपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेवमनन्य मानसः-परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (31)

Leaving aside the self-gathered karmas as the dweller in the body, no one gives anything to anyone. Think of this with a concentrated mind and give up the idea that their if another who gives.

भावार्थ-अपने द्वारा उपार्जित कर्म को छोड़कर कोई भी किसी भी जीव को कुछ देने में असमर्थ हैं। नहीं देता है ऐसा विचार कर दूसरा देता है ऐसी बुद्धि को छोड़कर एकाग्रमना हो।

प्राप्त शिक्षाएँ-जब सुनिश्चित हो जाता है कि स्वयं के सुख-दुःख के प्रमुख-मूलकारण स्व-उपार्जित कर्म ही है तब उस सुख-दुःख के लिए दूसरों को कारण मानकर उसके प्रति राग-द्वेषात्मक भाव से आकर्षण-विकर्षण नहीं होगा अपितु भाव स्वयं में ही केन्द्रित/स्थिर होगा। कर्म के फलस्वरूप सांसारिक दुःखों से निवृत्ति के लिए कर्मास्रव एवं बंध से भी दूर होकर पूर्वार्जित कर्म को नष्ट करने का प्रयत्न होगा। अतएव कर्म सिद्धांत का परिज्ञान/चिन्तन/अनुसंधान नितान्त आवश्यक है।

लोक में भी शेर, भेड़िया, चीता, साँप आदि में शूरता-क्रूरता आदि परोपदेश के बिना होने से यद्यपि नैसर्गिक कहलाते हैं, परन्तु वे आकस्मिक नहीं हैं, क्योंकि कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त सिद्धांत एवं दृष्टांतों से सिद्ध होता है कि कर्म के निमित्त को प्राप्त करके यह जीव अनेक वैभाविक परिणामों को प्राप्त होकर नर-नरकादि गति में विभिन्न दुःखों को भोगता है।

संसार अवस्था में विशेषतः परिणत अवस्था पर्यंत कर्म की शक्ति जीव से अधिक प्रचण्ड रहती है। यह प्रचण्ड शक्ति केवल सामान्य जीव को कष्ट नहीं देती है

किन्तु लोक के विशिष्ट चरम शरीर क्षायिक सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर भगवान् को भी परिणत अवस्था में वैचित्र्य पूर्ण कष्ट देती है। इस प्रचण्ड शक्ति का वर्णन आलंकारिक छटा से गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन में करते हैं-

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलित करः कियर इव।
स्वयं सृष्टा-सृष्टेः पतिरथ निधीनां निजसुतः।
क्षुधित्वा षणमासान् स किल पुरूरप्याट जगती-
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलंघ्यं हतविधेः।। (119)

जिस आदिनाथ जिनेन्द्र के गर्भ में आने के पूर्व छह महीने से ही इन्द्र दास के समान हाथ जोडे हुए सेवा में तत्पर रहा, जो स्वयं की सृष्टि की रचना करने वाला था, अर्थात् जिसने कर्मभूमि के प्रारंभ में आजीविका के साधनों से अपरिचित प्रजा के लिए आजीविका विषयक शिक्षा दी थी तथा जिसका पुत्र भरत निधियों का स्वामी (चक्रवर्ती) था, वह इन्द्रादिकों से सेवित आदिनाथ तीर्थंकर जैसा महापुरुष भी बुभुक्षित होकर छह महीने तक पृथ्वी पर घूमा, यह आश्चर्य की बात है। ठीक है-इस संसार में कोई भी प्राणी दुष्ट दैव के विधान को लाँघने में समर्थ नहीं है।

अनेकान्त से होता है विषयों का अन्तर्सम्बन्ध व स्याद्वाद से होता है उसका कथन

(चाल : यमुना किनारे श्याम जाया न करो.....)

अनेकांत होता है वैश्विक सूत्र...विश्व के हर द्रव्य को जोड़ने का सूत्र...
स्याद्वाद होता है उसका कथन...सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित यह सूत्र...(स्थायी)...

हर द्रव्य में होते अनंत गुण...उन गुणमय ही होता अनेकान्त...
अतः अनेकान्त होता द्रव्य स्वभाव...अतएव विश्वमय ही अनेकान्त...

सर्वज्ञ ने यह जाना व कहा...सर्वज्ञ ने अनेकान्त को नहीं बनाया...
सप्तभंगमय प्रतिपादन किया...अनंत सप्तभंगमय भी बताया...(1)...

हर द्रव्य में होती अनंत पर्याय...उनमें भी व्याप्त है अनेकांत...
उनका भी कथन स्याद्वाद से होता...स्याद्वाद भी अनंत भंगमय होता...

अस्ति रूप में हर द्रव्य समान...नास्ति रूप में परस्पर होते विभिन्न...
एक-दूसरों से होते पृथक्...एक में अन्य का होता अभाव...(2)...

युगपत् कथन ये नहीं संभव...अतएव इस दृष्टि से अवक्तव्य...
तीनों के भी होते मिश्रभंग...जिससे होते हैं मूल सप्तभंग...

समस्त शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य...उनके भी सभी गुण व पर्याय...
उपरोक्त विधि से होते सम्बन्ध...तथाहि होता उनका कथन...(3)...

अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व...अगुरुलघु गुण व प्रदेशत्व...
द्रव्यत्व गुण सहित अष्ट गुण...हर द्रव्य में होते हैं विद्यमान...

इन गुणों से हर द्रव्य समान...इसी से हर द्रव्य होते समन्वित...
चेतन-अचेतन व मूर्त-अमूर्त...अवगाहनादि गुण से होते पृथक्...(4)...

विज्ञान अभी भी शोधरत है...विश्व को जोड़ने में प्रयासरत है...
विश्व का एक सूत्र खोज रहा है...'एकीकृत सिद्धांत' नाम दे रहा है...

इसे जानने हेतु पढ़ो द्रव्य संग्रह...आलाप पद्धति वृहत् नय चक्र...
प्रवचनसार राजवार्तिक ग्रंथ...'कनकनन्दी' के प्रिय ये सभी ग्रंथ...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 05.06.2016, रात्रि 10.18

संदर्भ-

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो।। (581)

अवस्थान-स्थिति छहों द्रव्यों की समान है। क्योंकि त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय वा व्यंजनपर्याय के मिलने से ही उनकी स्थिति होती है।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं।। (582)

एक द्रव्य में जितनी त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय और व्यंजन पर्याय हैं उतना ही द्रव्य है। (गोम्मट्टसार जीवकाण्डम्, पृ. 265)

विश्वगुरु सापेक्ष (अनेकान्त सिद्धान्त)
वस्तु स्वरूप की सिद्धि

अर्पितानर्पितसिद्धेः।। (32)

The contradictary characteristics are established from

different points of view.

मुख्यतया और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है।

द्रव्य में अनन्त गुण एवं पर्याय होती हैं। उन अनन्त गुणों एवं पर्यायों का कथन एक साथ नहीं हो सकता है, परन्तु उस द्रव्य को जानना अनिवार्य है, क्योंकि द्रव्य के यथार्थ ज्ञान बिना रत्नत्रय की उपलब्धि नहीं हो सकती एवं रत्नत्रय के बिना मोक्षमार्ग नहीं हो सकता, मोक्षमार्ग के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और मोक्ष के बिना शाश्वतिक सुख नहीं मिल सकता है। इसीलिये यहाँ पर वस्तु स्वरूप के यथार्थ परिज्ञान की सर्वश्रेष्ठ व्यावहारिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है।

धर्मान्तर को विवक्षा से प्राप्त प्राधान्य अर्पित कहलाता है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के प्रयोजन वश जिस धर्म की विवक्षा की जाती है या विवक्षित जिस धर्म को प्रधानता मिलती है, उसे-अर्थरूप को अर्पित (मुख्य) कहते हैं।

अर्पित से विपरीत अनर्पित (गौण) है। प्रयोजक के प्रयोजन का (वक्ता की इच्छा का) अभाव होने से सत् (विद्यमान) पदार्थ की भी अविवक्षा हो जाती है। अतः उपसर्जनीभूत (गौण) पदार्थ अनर्पित (अविवक्षित) कहलाता है। वस्तु स्वरूप को जानने की जो गौण-मुख्य व्यवस्था है उसका व्यावहारिक सटीक वर्णन अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थसिद्धि ग्रन्थ में वर्णन किया है। यथा-

एकेनाकर्षती श्लथयंती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मथाननेत्रमिव गोपी।। (225)

जिस प्रकार ग्वालिन दही को बिलोती हुई एक रस्सी को अपनी ओर खींचती है, दूसरी रस्सी को ढीली करती है। यद्यपि रस्सी एक होने पर भी रई में लिपटी हुई रहने के कारण दो भागों में बँट जाती है, उसे गोपिका दोनों हाथों में पकड़कर दही बिलोती है। जिस समय वह एक हाथ से एक ओर की रस्सी को अपनी ओर खींचती है, उसी समय दूसरे हाथ की रस्सी को ढीली कर देती है अर्थात् उसे आगे बढ़ा देती है, इस प्रकार परस्पर एक को खींचने से दूसरी को ढीली करने से वह मक्खन (लोणी) निकाल देती है। यदि ग्वालिनी एक साथ दोनों छोर को समान बल से खींचती एवं छोड़ती तो मथनी गतिशील नहीं बनती और मक्खन भी नहीं निकलता। इसी प्रकार वस्तु स्वरूप के परिज्ञान के लिए विवक्षित विषय को मुख्य कर दिया जाता

है एवं अविवक्षित विषय को गौण किया जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि विवक्षित गुण, धर्म वस्तु में है एवं अविवक्षित गुण, धर्म वस्तु से पृथक् होकर लोप हो गये हो। इसको ही जैन धर्म में नयवाद या स्याद्वाद कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग के महामेधावी वैज्ञानिक आईंस्टीन ने भी इस अनेकान्त सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वे भी मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कथन सापेक्ष दृष्टि से होना चाहिए। आईंस्टीन यहाँ तक मानते हैं कि जब तक जीव असर्वज्ञ रहेगा तब तक वह सम्पूर्ण सत्य को नहीं जान सकता, केवल आंशिक सत्य को जान सकता है। इस आंशिक सत्य को आंशिक सत्य मानना सम्यक् है एवं आंशिक सत्य को ही पूर्ण सत्य मान लेना मिथ्या है। यथा-

Einstain says, 'we can only know the relative truth the real truth is know only to the universal observer.

आईंस्टीन के सापेक्षवाद के अनुसार हम जब जो जानते हैं, वह सम्पूर्ण सत्य (Absolute truth) नहीं है, किन्तु सापेक्षिक सत्य है। (Relative truth) है, सम्पूर्ण सत्य सर्वदर्शी सर्वज्ञ के द्वारा ही जाना जा सकता है।

सन्मति सूत्र में सिद्धसेन दिवाकर ने बताया कि अनेकान्त केवल वस्तु स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली दार्शनिक प्रणाली नहीं है, परन्तु लोक व्यवहार को सुचारू रूप से व्यवस्थित करने के लिए लौकिक प्रणाली भी है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडई।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।। (69)

जिस अनेकान्तवाद के बिना लोकव्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार हो।

जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव, कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुए भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुए भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से कोई प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने-अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त है। विशेष ज्ञान के लिए मेरा 'अनेकान्त दर्शन' का अध्ययन करें।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे-सेवफल नारियल से छोटा होते हुए भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आँवला सेवफल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। घी निरोगी के लिए शक्तिदायक होते हुए भी ज्वर रोगी के लिए हानिकारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है, परन्तु पेट्रोल-टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व आदि गुणों के कारण अनेक भी हैं।

यह अनेकान्त मानसिक अहिंसा है, क्योंकि इसमें एकान्तवाद, हठाग्रह, पूर्वाग्रह नहीं है। अनेकान्त सिद्धान्त दूसरों के सत्यांश को भी स्वीकार करता है। अनेकान्त का सिद्धान्त है Right is Mine अर्थात् जो सत्य है वह मेरा है। उसका दावा यह नहीं कि Mine is Right अर्थात् मेरा जो है वह सत्य है। अनेकान्त वस्तु स्वरूप तथा भावात्मक अहिंसा है तथा स्याद्वाद कथन प्रणाली या वचनात्मक अहिंसा है। इस अनेकान्त का स्पष्टीकरण करने के लिए और कुछ सरल उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसे-दो इंच लंबी वाली रेखा एक इंच वाली रेखा से लंबी है तथा तीन इंच लंबी रेखा से छोटी भी है। अनामिका अंगुली कनिष्ठा से बड़ी है, परन्तु मध्यमा से छोटी भी है। इसी प्रकार दिशा आदि में भी जान लेना चाहिए। जैसे एक व्यक्ति के लिए दूसरा व्यक्ति पूर्व में है तो पहला व्यक्ति उसके लिए पश्चिम में होगा।

Master Theory

Unified theory of universe (Theory of everything)

''अनेकान्त वन्दन (स्याद्वाद का स्वरूप)''

(Theory of relativity-सापेक्ष सिद्धान्त, एकीकृत सिद्धान्त)

(तर्ज : 1. बिन गुरु ज्ञान नहीं... 2. चालीसा... 3. मन तड़पत हरि दर्शन को)

दोहा- विश्व गुरु अनेकान्त से, हो व्यापक विचार,
लोकालोक में व्याप्त है, जिसकी महिमा अपार।

चौपाई- एकान्तवादी तुम जगो, करलो अपना सुधार,
सापेक्षवाद सतवाद से, हो जाओ भव पार।।

हे अनेकान्त सत्य स्वरूप, हे सनातन विश्व स्वरूप,

जीव-अजीव में व्याप्त स्वरूप, समस्त नय प्रमाण स्वरूप।
लोकालोक में व्याप्त रूप, मूर्तिक अमूर्तिक तेरा स्वरूप।
एकानेक व अनन्त रूप, सर्वव्यापी है शिव स्वरूप।।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप, खण्ड विखण्डित एक स्वरूप,
अस्ति-नास्ति अव्यक्त रूप, सप्तभंग मय तेरा रूप।
सर्वत्र व्याप्त है तेरा रूप, सार्वभौम है नित्य स्वरूप,
बन्ध मोक्ष भी तेरा रूप, सापेक्षवाद है तेरा स्वरूप।।

निरापेक्ष है मिथ्या रूप, सापेक्ष दृष्टि सत्य स्वरूप,
तेरी कृपा से होता सम्यक्, मिथ्यात्व है तुमसे पृथक्।
तेरे वियोगे अनन्त भव, जन्म-मरणे दुःख ही भोग,
कुवाद समस्त नाशन कर्त्ता, समाधान के तुम हो भर्त्ता।।

तुम बिन है न लौकिकाचार, तुम बिन है न सदाचार,
तुम बिन है सब तर्क-कुतर्क, तुम बिन है स्वर्ग भी नर्क।
तुम बिन है न न्याय प्रणाली, तुम बिन है न कार्य प्रणाली,
तुम बिन है न सम्यक् मार्ग, तुम बिन है न मोक्षमार्ग।।

तुम तो आदि अन्त रहित, सर्व सत्य में सर्वत्र व्याप्त,
चेतन में तुम चेतन रूप, अचेतन में उसी ही रूप।
सर्वज्ञ द्वारा तुम सुज्ञात, सुदृष्टि द्वारा तुम पूजित,
तुम्हें न माने मिथ्यादृष्टि, तुम बिन चलती है सृष्टि।।

सूर्य न देखे जन्मान्ध व्यक्ति, अज्ञानी न जाने तुम्हारी शक्ति,
'कनकनन्दी' के साध्य-साधन, तुमसे ही मैं होता हूँ धन्य।
त्रैलोक्यनाथ के शासन तन्त्र, तुम्हें नमूँ मैं हे विश्वतन्त्र।।

तीन काल में स्वाध्याय परम तप अतएव

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)
सतीर्थङ्कर गणधर तथाहि पूर्व आचार्य,
स्वाध्याय को कहा है परम तप तीन लोक के मझार।

स्व का अध्ययन है स्वाध्याय जिसमें/(से) होता स्व (मैं) अध्ययन,
स्व (मैं) अध्ययन से ही स्वाध्याय होता है परम तप।। (1)

स्व-अध्ययन हेतु ही आगम का होता है अध्ययन,
इसी हेतु ही देव-शास्त्र-गुरु का होता है अध्ययन।

इसी हेतु ही द्रव्य-तत्त्व व पदार्थ का होता अध्ययन,
प्रमाणनय निक्षेप व अनेकांत का अध्ययन।। (2)

व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय का होता है अध्ययन,
कर्म सिद्धांत व मार्गणा-गुणस्थान का होता अध्ययन।

तीन लोक व चार अनुयोग चारों गतियों का अध्ययन,
स्व-शुद्धात्मा के अध्ययन बिन नहीं होता है स्वाध्याय।। (3)

इसी हेतु योग्य गुरु चाहिए जो आत्मानुभवी निस्पृह है,
उनके पादमूल में अध्ययन करता विनय शिष्य है।

विनय बहुमान उपधान व अनिह्नव सहित,
पञ्चेन्द्रिय निरोध व त्रिगुप्ति एकाग्रता से युक्त।। (4)

अष्ट विध शुद्धि सहित व ख्याति पूजा लाभ रहित,
समता शांति सहित व कषायों से होता रहित।

वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश,
अध्ययन-अध्यापन शास्त्र लेखन व प्रकाशन।। (5)

इसी से होता है धर्मध्यान व पापों का संवरण,
सातिशय होता पुण्य बंध असंख्यात गुणा निर्जरण।

नवीन-नवीन होते ज्ञान संवेग व वैराग्य,
आत्मविशुद्धि से होता आत्मानंद जो आत्म स्वभाव।। (6)

राग द्वेष मोह होते क्षीण होता आत्म आह्लाद,
संकल्प-विकल्प व संक्लेश कषाय भी होते हीन।

वैर-विरोध भी होते नाश होता द्वंद्व विलय,
आत्मानुभव रस से आप्लावित होता स्वाध्याय।। (7)

अतएव स्वाध्याय को परम तप कहा तीर्थंकरों ने,
स्व-पर प्रकाशक ज्योति परोक्ष केवलज्ञान है।
हिताहित विवेक उत्पादक स्वर्ग-मोक्षदायक,
अतएव स्वाध्याय परम तप सतत करे 'कनक'।। (8)
ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 06.06.2016, मध्याह्न 1.14

संदर्भ-

उत्तम मनुष्य, उत्तम देश, उत्तम कुल, उत्तम रूप इन्द्रियों की विशुद्धता, बाधा रहित आयु, श्रेष्ठ बुद्धि, सच्चे धर्म का सुनना, ग्रहण करना धारण करना उसका श्रद्धान करना, संयम का पालना, विषयों के सुख से हटना, क्रोधादि कषायों से बचना आदि परंपरा दुर्लभ सामग्री को भी कथंचित् काकतालीय न्याय से प्राप्त करके सर्व प्रकार निर्मल केवलज्ञान केवलदर्शन स्वभाव अपने परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान व आचरण रूप अभेद रत्नत्रयमय निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न जो रागादि की उपाधि से रहित परमानंदमय सुखामृत रस उसके स्वादानुभव का लाभ होते हुए, जैसे अमावस के दिन समुद्र जल की तरंगों से रहित निश्चल क्षोभ रहित होता है, राग-द्वेष-मोह की कल्लोलों के क्षोभ से रहित होकर जैसा अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित होता जाता है वैसा ही अपने शुद्धात्म स्वरूप को प्राप्त करता है।

समीक्षा-इस गाथा में कुंदकुंद देव ने शास्त्र-अध्ययन का फल तथा प्रवचनसार के स्वरूप का वर्णन किया है। केवल शब्दात्मक ग्रंथ के अध्ययन से आत्म-तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती है परन्तु शब्द ब्रह्म (द्रव्यागम) के द्वारा प्रतिपादित परम ब्रह्म (निज शुद्धात्म तत्त्व) को जानता है, मानता है एवं प्राप्त करता है उसका ही शास्त्र अध्ययन सफल है अन्यथा तोता रटंत के समान या टेपरिकॉर्ड के समान विफल है। जिस प्रकार टेप में आध्यात्मिक ग्रंथों को टेप करने से टेप को कोई सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र नहीं हो जाता है। उसी प्रकार केवल मतिज्ञानावरणीय एवं श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से केवल आध्यात्मिक शास्त्रों के अध्ययन, प्रवचन, लेखन भी कार्यकारी नहीं हो सकता है। कुंदकुंद देव ने समयसार की अंतिम गाथा में जिस रहस्य का प्रतिपादन किया है उसी ही रहस्य का इसमें प्रतिपादन किया है। यथा-

जो समयापाहुड़मिणं पडिदूणय अत्थतच्चदो णादुं।

अत्थे ठाहिदि चेदा सो पावदि उत्तमं सोक्खं।। (439) (स.पृ.375)

जो समयपाहुड़मिणं पड़िदुणय श्री कुंदकुंदाचार्य देव इस समयसार ग्रंथ को समाप्त करते हुए इसका फल दर्शाते हैं कि कोई भी जीव इस समया प्राभृत नाम के ग्रंथ को पढ़कर, केवल पढ़कर ही नहीं अत्थतच्चदो णादुं अर्थ और तत्त्व से भी जानकर अर्थात् उसके भाव को भी समझकर अत्थे ठाहिदि पश्चात् शुद्धात्म लक्षण वाले उपादेय पदार्थ में अर्थात् निर्विकल्प समाधि में लगा रहेगा चेदासो पावदिसोक्खं वह आत्मा आगामी काल में वीतराग रूप सहज अपूर्व परम आह्लाद रूप सुख को प्राप्त करेगा। वीरसेन स्वामी ने भी धवला में ज्ञान का कार्य तत्त्व रूचि, तत्त्व निर्णय, चारित्र का पालन कहा है। यथा-

किं तद् ज्ञानकार्यमिति चेत्तत्त्वार्थे रूचिः प्रत्ययः श्रद्धा चारित्र स्पर्शन च।

(धवला.पृ.353)

शंका-ज्ञान का कार्य क्या है?

समाधान-तत्त्वार्थ में रूचि, निश्चय श्रद्धा और चारित्र का धारण करना ज्ञान का कार्य है।

जानातीतिज्ञानं साकारोपयोग। अथवा ज्ञानात्यज्ञासीज्ज्ञास्यत्त्यनेनेति वा ज्ञानं ज्ञानावरणीयकर्मणः एकदेश प्रक्षयात् समुत्पन्नात्मपरिणामः क्षायिको वा।

जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अर्थात् साकार उपयोग को ज्ञान कहते हैं अथवा जिसके द्वारा यह आत्मा जानता है, जानता था अथवा जानेगा, ऐसे ज्ञानावरण कर्म के एकदेश क्षय से अथवा संपूर्ण ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न हुए आत्मा के परिणाम को ज्ञान कहते हैं। मूलाचार में भी कहा है-

णाणविण्णाणसंपण्णो झाणज्झणतवेजुदो।

कसायगारवुम्मुक्को संसारं तरदे लहुं।। (970) मूलाचार ॥

ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न एवं ध्यान, अध्ययन और तप से युक्त तथा कषाय और गारव से रहित मुनि शीघ्र ही संसार को पार कर लेते हैं।

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसंवुड़ो तिगुत्तो य।

हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू।। (971)

विनय से सहित मुनि स्वाध्याय करते हुए पंचेन्द्रियों को संकुचित कर तीन

गुप्ति युक्त और एकाग्रमना हो जाते हैं।

बारसविधह्मि य तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।

ण वि अत्थि ण वि य होहदि सज्झायसमं तवोकम्मं।। (972)

गणधर देवादि प्रदर्शित, बाह्य अंतरंग से सहित बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय समान तप कर्म न है और न होगा ही।

सूई जहा ससुत्ता ण णस्सदि दू पमाददोसेण।

एवं ससुत्तपुरिसो ण णस्सदि तहा पमाददोसेण।। (973)

जैसे धागे सहित सुई प्रमाद दोष से भी खोती नहीं है ऐसे ही सूत्र के ज्ञान से सहित पुरुष प्रमाद दोष से भी नष्ट नहीं होता।

शास्त्राध्ययन फल का विशेष वर्णन भगवती आराधना में निम्न प्रकार से किया है-

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसुंवुड़ो तिगुत्तो य।

हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिदो भिक्खू।। (पृ.136 गा.103)

विनय से युक्त होकर स्वाध्याय करता हुआ साधु पाँचों इन्द्रियों के विषयों से संवृत्त और तीन गुप्तियों से गुप्त एकाग्र मन होता है।

जह जह सुदमोग्गाहदि अदिसयरसपसरमसुदपुव्वंतु।

तह तह पल्हादिज्जदि नवनवसंवेगसड्ढाए।। (104)

जैसे-जैसे अतिशय अभिधेय से भरा, जिसे पहले कभी नहीं सुना ऐसे श्रुत को अवगाहन करता है, तैसे-तैसे नई-नई धर्म श्रद्धा से आह्लाद युक्त होता है।

बारसविहम्मि य तवे सब्भंतरबाहिरेकुसलदिट्ठे।

ण वि अत्थि ण वि य होहिदि सज्झायसमं तवो कम्मं।। (106)

सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट अभ्यंतर और बाह्य भेद सहित बारह प्रकार के तप में स्वाध्याय के समान तप क्रिया नहीं है और न होगी ही।

जोग्गं कारिज्जंतो अस्सो दुहभाविदो चिरं कालं।

रणभूमीए वाहिज्जमाणओ कुणदि जह कज्जं।। (पृ.228 गा. 194)

जैसे योग्य शिक्षा को प्राप्त अश्व चिरकाल तक दुःख से भावित हुआ, अर्थात् कष्ट सहने का अभ्यासी युद्ध भूमि में सवारी में ले जाने पर कार्य करता है।

पुव्वं कारिदजोगो समाधिकामो तहा मरण काले।

होदि हु परीसहसहो विसयसुहपरम्मुहो जीवो।। (195)

उसी प्रकार पूर्व में तप करने वाला विषय सुख से विमुख जीव मरते समय समाधि का इच्छुक हुआ निश्चय से परिषह को सहने वाला होता है।

सुदभावणाए णाणं दंसणतवसंजमं च परिणवइ।

तो उवओगपइण्णा सुहमच्चविदो समाणेइ।। (196)

श्रुत भावना से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, तप और संयम रूप परिणमन करता है। ज्ञान भावना से उपयोग की प्रतिज्ञा को सुखपूर्वक अचलित होता हुआ समाप्त करता है।

जदणाए जोग्गापरिभाविदस्स जिणवयणमणुगदमणस्स।

सदिलोवं कादुं जे ण चयंति परीसहा ताहे।। (197)

तब यत्न से अपने को तप से भावित करने वाले के तथा जिनागम के अनुगत चित्त वाले के स्मृति का लोप करने में परिषह समर्थ नहीं होती।

कुंदकुंद ने दर्शन प्राभृत में जिनेन्द्र वचन को परम औषधि तथा अमृत रूप कहा है क्योंकि इसके माध्यम से जीव विषयरूपी विष को वमन कर देता है, जन्म, जरा, मरण रूपी रोग से मुक्त होकर अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेता है। यथा-

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।

जर-मरण वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।। (17 अष्टपा. पृ.33)

यह जिनवचन रूपी औषधि विषयसुख को दूर करने वाली है, अमृत रूप है, जरा और मरण की व्याधि को हरने वाली है, तथा सब दुःखों का क्षय करने वाली है।

पूज्यपाद स्वामी ने श्रुतभक्ति में जिनवाणी की स्तुति करते हुए कामना करते हैं कि मुझे इस स्तुति के फलस्वरूप ज्ञान का फल अनंत सौख्य है वह प्राप्त होवे। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान का फल मोक्ष है। यथा-

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त लोक चक्षूंषि।

लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि, ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम्।। (30)

(धर्मध्या. प्र.पृ.62)

इस प्रकार पाँचों ही ज्ञान समस्त पदार्थों को जानने के लिए नेत्र के समान हैं। इसलिये स्तुति करने वाले मुझे बहुत शीघ्र अनंत तथा अविनाशी सुख की प्राप्ति हो, जो सुख ज्ञान से ही उत्पन्न होता है, इन्द्रियों से उत्पन्न नहीं होता अथवा पुष्पमाला,

भोजन, स्त्री आदि बाह्य पदार्थों से उत्पन्न नहीं होता। केवलज्ञान, आत्मा से उत्पन्न होता है तथा जिस सुख में ज्ञान की अनेक ऋद्धियाँ भरी हुई हैं, अनंतदर्शन और अनंतवीर्य जिस अनंतसुख के साथ है ऐसा अनंतसुख मुझे शीघ्र ही प्राप्त हो।

तिलोयपण्णत्ति में यतिवृषभाचार्य ने तथा धवला में वीरसेन स्वामी ने शास्त्र अध्ययन के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष फल का वर्णन किया है। प्रत्यक्ष फल अज्ञान की निवृत्ति एवं ज्ञान की उत्पत्ति, शिष्यादि द्वारा पूजा-सत्कार एवं बहुमान तथा असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा है। परोक्ष फल संसार के अभ्युदय सुख एवं अंत में मोक्ष सुख है। यथा-

केवलणाण-दिवायर-किरणकलावादु एत्थ अवदारो।
गणहरदेवेहिं गंथुप्पत्ति हु सोहं त्ति संजादो।। (33) (ति.प.। पृ.8)

केवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणों के समूह से श्रुत के अर्थ का अवतार हुआ तथा गणधर देव के द्वारा ग्रंथ की उत्पत्ति हुई। यह श्रुत कल्याणकारी है।

छद्दव्वह-णव- पयत्थे सुदणाणं दुमणिकिरण-सत्तीए।
देक्खंतु भव्व जीवा अण्णाण तमेण संछण्णा।। (34)

अज्ञान रूपी अंधेरे से आच्छादित हुए भव्व जीव श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की किरणों की शक्ति से छह और नव पदार्थों को देखे (यही ग्रंथावतार का निमित्त है)।

दुविहो हवेदि हेदु तिलोयपण्णत्ति गंथअज्झयणे।
जिणवर-वयणुद्दिट्ठो पच्चक्ख परोक्ख भेएहिं।। (35)

त्रिलोक प्रज्ञप्ति ग्रंथ के अध्ययन में जिनेन्द्र देव के वचनों से उपदिष्ट हेतु, प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है।

सक्खा-पच्चक्खा-परंपच्चक्खा दोण्णि होंति पच्चक्खा।
अण्णाणस्स विणासं णाण दिवायरस्स उत्पत्ती।। (36)
देव- मणुस्सादीहिं संततमब्भच्चण प्पयाराणि।
पडिसमयमसंखेज्जय गुणसेढि कम्म णिज्जरणं।। (37)
इय सक्खं-पच्चक्खं पच्चक्ख परंपरं च णादव्वं।
सिस्स पडिस्सि पुहुदीहिं सददमब्भच्चण पयारं।। (38)

प्रत्यक्ष हेतु, साक्षात् प्रत्यक्ष और परंपरा प्रत्यक्ष के भेद से दो प्रकार का है। अज्ञान का विनाश, ज्ञानरूपी दिवाकर की उत्पत्ति, देव तथा मनुष्यादिकों के द्वारा निरंतर की जाने वाली विविध प्रकार की अभ्यर्चना (पूजा) और प्रत्येक समय में

असंख्यात गुणश्रेणी रूप से होने वाली कर्मों की निर्जरा साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु है। शिष्य-प्रतिशिष्य आदि के द्वारा निरंतर अनेक प्रकार से की जाने वाली पूजा को परंपरा प्रत्यक्ष हेतु जानना चाहिए।

दो भेदं च परोक्खं अब्भुदय सोक्खाइं मोक्ख-सोक्खइं।
सादादि विविह सुपसत्थ कम्म तिव्वाणुभाग उदएहिं।। (39)
इंद पडिंद-दिगिंदय तेत्तीसामर समाणा पहुदि सुहं।
राजहिराज महराज अद्धमंडलिय मंडलियाणं।। (40)
महमंडलियाणं अद्धचक्कि चक्कहर तित्थयर सोक्खं। (41/I)

परोक्ष हेतु भी दो प्रकार का है एक अभ्युदय सुख और दूसरा सुख। सातावेदनीय आदि विविध सुप्रशस्त कर्मों के तीव्र अनुभाग के उदय से प्राप्त हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र (लोकपाल), त्रायस्त्रिंश एवं सामानिक आदि देवों का सुख तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, अर्धचक्री (नारायण-प्रतिनारायण) चक्रवर्ती और तीर्थंकर इनका सुख अभ्युदय सुख है।

सोक्खं तित्थयराणं सिद्धाणं तह य इंदियादीदं।
अदिसयमाद समुत्थ णिस्सेयसमणुवमं पवरं।। (49)

तीर्थंकरों (अरिहंतों) और सिद्धों के अतीन्द्रिय, अतिशय रूप, आत्मोत्पन्न अनुपम तथा श्रेष्ठ सुख को निःश्रेयस सुख कहते हैं।

सुदणाण-भावणाए णाणं मत्तंड किरण-उज्जोओ।
चंदुज्जलं चारित्तं णियवसं-चित्तं हवेदि भव्वाणं।। (50)

श्रुतज्ञान की भावना से भव्य जीवों को ज्ञान सूर्य की किरणों के समान उद्योत रूप अर्थात् प्रकाशमान होता है, चरित्र चन्द्रमा के समान उज्ज्वल होता है तथा चित्त अपने वश में होता है।

कणय-धराधर-धीरं मूढ त्तय विरहिदं हयट्ठमलं।
जायदि पवयण पढणे सम्मद्दंसणमणुवमाणं।। (51)

प्रवचन (परमागम) के पढ़ने से सुमेरू पर्वत के समान निश्चल, लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता और गुरुमूढ़ता, इन तीन (मूढ़ताओं) के रहित और शंका-कांक्षा आदि आठ दोषों से विमुक्त अनुपम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

सुरखेयर-मणुवाणं लब्भंति सुहाइं आरिसब्भासा।

तत्तो णिव्वाण-सुहं णिण्णासिद दारुणट्ठमला।। (52)

आर्ष वचनों के अभ्यास से देव-विद्याधर तथा मनुष्यों के सुख प्राप्त होते है और अंत में दारूण अष्ट कर्ममल से रहित मोक्षसुख की भी प्राप्ति होती है।

भगवान् विमलनाथ पूजन

(पूजा के आध्यात्मिक वैज्ञानिक सकारण)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सुनिये जिन अरज हमारी....., तुम दिल की.....)

आह्वान : (भावनात्मक रूप से पूज्यों का सान्निध्य प्राप्त करना)

शतार स्वर्ग से आये, पंचकल्याण युन मोक्ष पाये।
हम भी तव पद ही चाहे, भाव से आपके गुण गाये।।

आह्वान करते तव गुण हेतु, भाव-द्रव्य पूजा इसी हेतु।
विमल पद लक्ष्य संयुक्त, विमलनाथ पूजे आत्महित।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवोषट् आह्वानन्।
ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं।

1. उदक-(आत्मिक विशुद्धि व जन्म जरा मृत्यु विनाश के प्रतीक)

प्रासुक सुगंधित जल से, विमल पद हम पूजे भाव से।
जन्म-जरा-मृत्यु नाश हेतु, करे हम भव नाश हेतु।।

जल शीतलता का प्रतीक, मल धौत हेतु भी प्रतीक।
प्रतीक से हम यथार्थ चाहे, शान्त शीतल विमल गुण चाहे।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

2. चन्दन-(संक्लेश ताप विनाश व भाव आह्लाद के प्रतीक)

संसार ताप विनाशन हेतु प्रतीक चन्दन हम लाये।
विमलनाथ के पद कमल में, भक्तिपूर्वक हम चढ़ाये।

सम्यक्त्व के अष्ट अंग से, मोह के अष्ट दोष नशाये।

प्रशम संवेग आस्तिक अनुकम्पा से, जीवन को हम महकाये।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं...

3. अक्षत-(संसार उत्पादक कर्मनाशक व अक्षयपद के प्रतीक)

अक्षय पद की प्राप्ति हेतु, अक्षत प्रतीक लाये हम।
धवल सुगंधित अक्षत चढ़ाकर, विमल पद को पाये हम।।

सांसारिक वैभव सब कुछ, क्षणभंगुर दुःखदायी जाने/(पाये)।
इसलिये अक्षय पद हेतु, विमलनाथ को ध्याये हम।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतम्...

4. सुमन (पुष्प)-(ब्रह्मभाव विकास व ज्ञानानंद रस के प्रतीक)

सुगंध मनोहर सुमन चढ़ाकर, विमलनाथ को पूजे हम।
कामबाण क्लेशनाश हेतु, विमलनाथ को ध्याये हम।।

विमलनाथ के ज्ञान ध्यान से, भावसुमन विकसाये हम।
कोमल आह्लादित भाव द्वारा, विमलनाथ (के) गुण पाये हम।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं...

5. नैवेद्य-(क्षुधा रोग विनाश के प्रतीक)

प्रासुक षट्रस भरित सुमधुर, नैवेद्य प्रभु को अर्पण करे।
क्षुधा शान्त आत्मरस हेतु, विमलनाथ को हिये धरे।।

आत्मरस अमृत प्राप्ति हेतु, विषयभोग को हेय माने।
अनन्त चतुष्टय प्राप्ति हेतु, विमलभाव को श्रेय माने।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं...

6. दीपक-(अज्ञान मोहान्धकार के प्रतीक)

दीपक तमहर प्रतीक से, विमलनाथ को पूजे हम।
आध्यात्मिक ज्ञानज्योति से, अज्ञान मोह को हने हम।।

अज्ञान मोह को नाशकर, भव भ्रमण दूर करे।
ऐसे उज्ज्वल भाव लेकर, विमलनाथ की पूजा करे।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं...

7. धूप-(अष्टकर्म नाश व अष्टगुण प्राप्ति के प्रतीक)

अष्टकर्म के ज्वलन हेतु, धूप प्रतीकमय हम खेये।
अगर-तगर-चन्दन मिश्रित, सुगन्धित धूप को खेये।।

भाव-वायु प्रदूषण हर, धूप खेकर मन हरषाये।
विमलनाथ/(भगवान्) के गुण प्राप्ति हेतु, कर्ममल हम सभी नशाये।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं...

8. फल-(मोक्षफल प्राप्ति के प्रतीक)

विविध रसाल फल लाये, विमलनाथ प्रभु को चढ़ाये।
मोक्ष फल के यह प्रतीक, आम्र नारिकेल फल आदिक।।

धर्म वृक्ष का फल मोक्ष, जिससे मिले अनंत सुख।
मोक्ष हेतु ही तव पूजन, उसी हेतु ही भावना सब।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय महामोक्षफलप्राप्ताय फलं...

9. अर्घ्य-(अनर्घ्य गुण समूह प्राप्ति के प्रतीक)

आगमोक्त अष्ट द्रव्य लेकर, भक्ति भाव (से) पूजन जिनवर।
अनर्घ्य आत्मोपलब्धि हेतु, अर्घ्य चढ़ाते है मोक्ष हेतु।।

भौतिक उपलब्धियों से परे, आत्मिक लाभ हो हमारे।
विमल पद प्राप्ति के कारण, करते विमलनाथ पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं...

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चाल : तुम दिल की.....)

1. **गर्भकल्याणक-**

जेष्ठवदी दशमी शुभ बेला में, प्रभु आये माता (के) गर्भ में।
गर्भ में ही थे प्रभु महाज्ञानी, मति-श्रुत व अवधिज्ञानी।।

ॐ ह्री गर्भमंगलमंडिताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

2. **जन्मकल्याणक-**

माघ शुक्ल चौदस के दिन, हुआ विमलनाथ का जन्म।

सुमेरू पर हुआ अभिषेक महान्, दस अतिशय युक्त भगवान्।।

ॐ ह्री जन्ममंगलमंडिताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...

3. तप (दीक्षा) कल्याणक-

माघ शुक्ल चौदस अपराह्न, श्रमण बने विमलनाथ भगवान्।
मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हुआ, चउसठ (64) ऋद्धि सम्पन्न भगवन्त।।

ॐ ह्री तपोमंगलमंडिताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...

4. केवलज्ञान कल्याणक-

पौष शुक्ल दशमी अपराह्न, प्राप्त हुआ प्रभु को केवलज्ञान।
लोक-अलोक हुआ प्रकाशित, अनंत चतुष्टय गुण सहित।।

ॐ ह्री केवलज्ञानप्राप्ताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...

5. मोक्ष कल्याणक-

आषाढ़ कृष्ण अष्टमी के दिन, पाये विमनाथ परिनिर्वाण।
श्री सम्मेदशिखर मोक्ष स्थान, हुए शुद्ध-बुद्ध भगवान्।।

ॐ ह्री मोक्षमंगलमंडिताय श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...

जयमाला

(चाल : जय हनुमान.....)

(आध्यात्मिक विजय के लिए पूज्य विमलनाथ प्रभु के गुणानुस्मरण-गुणानुवाद-गुणानुकरण)

जय विमलनाथ हे! विगतमल, रागद्वेष रहित आप निर्मल।
घाति कर्म रिक्त हो अरिहन्त, अनन्त ज्ञान युक्त भगवन्त।।

अठारह दोष रहित निर्दोष समवशरण पति आप जिनेश।
सात सौ अठारह भाषा में उपदेशक, शतेन्द्र से पूजित परमेश।।

मोक्षमार्ग उपदेशक तीर्थेश, अनेकान्तमय आपका/(तव) उपदेश।
षट्द्रव्यमय लोक बताया, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय लोकालोक।।

अनादि अनंत लोक-अलोक, हर द्रव्य शाश्वत गुणपर्याय युत।
धर्म-अधर्म-काल-आकाश, शाश्वत शुद्ध द्रव्य अमूर्तिक।।

अशुद्ध-शुद्ध होते जीव पुद्गल, अशुद्ध संसारी (जीव) शुद्ध निर्मल।

कर्म सहित जीव होते संसारी, कर्म रहित जीव अशरीरी।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, ध्यान-अध्ययन संयम युक्त।
सर्व परिग्रह मुक्त (जो) श्रमण, आत्मविकास द्वारा पाते निर्वाण।।

श्रमण उपासक होते श्रावक, श्रद्धा-प्रज्ञा-चारित्र युक्त।
दान-दया-पूजा व्रत सहित, श्रमण बनकर होते हैं मुक्त।।

पचपन (55) गणधर के स्वामी आप, अड़सठ (68) हजार श्रमण आपके।
एक लाख तीस हजार श्रमणी हुई, दो लाख श्रावक चार लाख श्राविका हुई।।

अंत में योग निरोध किया, अघाती नाशकर मोक्ष को पाया।
सम्मेदशिखर से मोक्ष सिधारे, विराजमान आप लोक शिखरे।।

आपके साथ में छः सौ मुनि मोक्ष पधारे, शुद्ध-बुद्ध हो विराजे लोक-शिखरे।
आपके गुण प्राप्ति हेतु पूजे, सांसारिक दुःखों से निवृत्त कीजे।।

जय विमल जिनेशं त्रिभुवनईशं, सुर-नर पूजित भव्येशं।
हम तव गुण गाये भक्ति बढ़ाये, तव पद चाहे हे! जगदीशं।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं...

दोहा- जो भाव-भक्ति-शक्ति से, विमल प्रभु पूजा करे।
सभी भव-ताप संताप नाशे, 'कनक' सिद्धि पद वरे।।

।।परिपुष्पाञ्जलिम् क्षिपेत्, इत्याशीर्वादः।।

(यह पूजा विजयलक्ष्मी के कारण बनी।)
ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 27.05.2015, रात्रि 2.22

तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की पूजा

(पूजा के आध्यात्मिक वैज्ञानिक सकारण)

-आचार्य कनकनन्दी

(लय : जय हनुमान....., तुम दिल की....., सायानोरा.....)

आह्वान-(भावनात्मक रूप से पूज्यों का सान्निध्य प्राप्त करना)

दश-अध्यायमय तत्त्वार्थसूत्र, सूरी उमास्वामी रचित ग्रंथ।
मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ, आत्मा को परमात्मा बनाने के सूत्र।।

द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ सहित, अनेकान्त-स्याद्वाद सहित।
हम पूजते हैं भाव सहित, मोक्ष प्राप्ति की भावना युक्त।।

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव द्वादशांग सारभूत श्री तत्त्वार्थसूत्र!
अत्र अवतर-अवतर संवोषट् आह्वाननं! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ
ठः ठः स्थापनं! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं

(चाल : शत-शत वंदन.....)

1. जल (उदक)-(आत्मिक विशुद्धि व जन्म-जरा-मृत्यु विनाश के प्रतीक)

जन्म-जरा-मृत्यु नाशन हेतु, जल चढ़ाते हम तृप्ति हेतु।
प्रासुक सुगन्धित जल (के) द्वारा, तत्त्वार्थसूत्र पूजे मोक्ष हेतु।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वापामीति स्वाहा।

2. चन्दन-(संक्लेश ताप विनाश व भाव आह्लाद के प्रतीक)

संसार ताप विनाशन हेतु, चन्दन अर्चन शान्ति के हेतु।
मलयागिरि चन्दन घिस लाये, तत्त्वार्थसूत्र पूजे आनन्द हेतु।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं...

3. अक्षत-(संसार उत्पादक कर्मनाश व अक्षय पद के प्रतीक)

अक्षत सुवासित धवल मनोहर अक्षय पद प्राप्ति हेतु पूजे ग्रंथवर।
सांसारिक सुख (तो) क्षणिक पापकर अक्षय पद तो अनन्त सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतं...

4. पुष्प (सुमन)-(ब्रह्मभाव विकास व ज्ञानानंद रस के प्रतीक)

कमल गुलाब पारिजात मनोहर, विकसित सुवासित मृदु पुष्पवर।
मोक्षशास्त्र पूजे हम मदनहर, दश अध्याय ग्रंथित ग्रंथवर।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं...

5. नैवेद्य-(क्षुधा रोग विनाश के प्रतीक)

मधुर मनोहर नैवेद्य लेकर, तत्त्वार्थसूत्र पूजे क्षुधा रोगहर।
असाता व घाती से उपजे क्षुधा, इनके नाश हेतु नैवेद्य से पूजा।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय क्षुधारोगनिवारणाय नैवेद्यं...

6. दीपक-(अज्ञान मोहन्धकार विनाश के प्रतीक)

अज्ञान तमहर ज्ञान ज्योति हेतु, दीपक से पूजे मोह नाश हेतु।
तत्त्वार्थसूत्र को पूजे हम सब, सुज्ञान प्राप्त हो हमको शीघ्र।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय मोहन्धकारविनाशनाय दीपं...

7. धूप-(अष्टकर्म नाश व अष्टगुण प्राप्ति के प्रतीक)

अष्टकर्म के नाशन हेतु, धूप खेते हैं मोक्ष के हेतु।
मोक्षशास्त्र पूजते इसके हेतु, सच्चिदानंद बनने हेतु।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं...

8. फल-(मोक्षफल प्राप्ति के प्रतीक)

सुरस सुपक्व फल चढ़ाकर, पूजते हम तत्त्वार्थसूत्रवर।
मोक्ष प्राप्ति ही हमारा लक्ष्य, भेदाभेद रत्नत्रय से प्राप्त।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय महामोक्षफलप्राप्ताय फलं...

9. अर्घ्य-(अनर्घ्य गुण समूह प्राप्ति के प्रतीक)

अष्टद्रव्यमय अर्घ्य चढ़ाकर, अनर्घ्य पद हेतु पूजे ग्रंथवर।
ग्रंथ अध्ययन-मनन-आचरण से मोक्ष गमन करते भाव से।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं...

जयमाला

(लय : पंचमेरू पूजा जयमाला....., प्रथम सुदर्शन मेरू विराजै.....)

मोक्षमार्ग प्रतिपादक ग्रंथ, उमास्वामी द्वारा रचित सूत्र।
दश अध्याय में ग्रंथित सूत्र, सुदर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त।।

जीव पुद्गल व धर्म-अधर्म, आकाश-काल सह छहों द्रव्य।
जीव-अजीव आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा-मोक्ष तत्त्व।।

पुण्य-पाप सह नव पदार्थ, इनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन।
षट्द्रव्यमय लोक बताया, केवल आकाश अलोक कहा।।

लोकालोक को शाश्वत कहा, उत्पाद-व्यय-ध्रौव बताया।
तत्त्वार्थ श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन, निश्चय से स्वशुद्धात्मा श्रद्धान।।

सम्यग्दर्शनपूर्वक होता सुज्ञान, दोनों सहित सम्यक् आचरण।
सम्यक् चारित्र के दो भेद, श्रावक (चारित्र) व मुनि चारित्र।।

पंचाणुव्रतादि युक्त श्रावक, प्रथम प्रतिमा से लेकर क्षुल्लक।
महाव्रतधारी होते श्रमण, आत्मविशुद्धि हेतु करते श्रम।।

ध्यान-अध्ययन-समता युक्त, कर्मनाश हेतु सदा प्रयत्न।
घाती नाश कर बने अरिहंत, अष्टकर्म नाश से बनते सिद्ध।।

अष्ट मूलगुण से होते संयुक्त, अनंतानंत गुणों से मण्डित।
भव्य जीव ही बनते सिद्ध, सिद्धप्रभु (भगवान्) ही सच्चिदानंद।

दशों अध्याय में यह वर्णित, 'कनकनन्दी' द्वारा आराध्य ग्रंथ।।
ॐ ह्रीं तत्त्वार्थसूत्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- भावना भक्ति से ग्रंथ का करता जो स्वाध्याय।
एक उपवास का फल पावे परंपरा से मोक्ष।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जली क्षिपेत्
ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 02.06.2016, रात्रि 12.38

आरती

आगम नी थालीमा गुरुवाणी दीपक, जगमग ज्योति प्रकाश रे।
हालो-हालो ने आरती करिये रे, हालो-हालो ने आरती करिये रे।।

1. ज्ञानी-ध्यानी, स्वाध्याय तपस्वी,
   मौनी-एकांतप्रिय निस्पृही गुरुजी,
   विज्ञानी गुरु ने आरती करिये रे।। हालो.....
2. आगम (ना) ज्ञानी, सर्वज्ञान पारगामी,
   अनेकांत-स्याद्वाद धर्म अनुगामी,
   वैश्विक गुरु नी आरती करिये रे।। हालो.....
3. सरल स्वभावी, समताधारी,
   स्व-आत्म ध्यानी, ने पर उपकारी,
   सतत चिन्तन-लेखन करे छे।। हालो.....

अयाचक निस्पृही संतप्रवर श्रमणाचार्य

श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के आगामी चातुर्मास

वर्ष 2016, अतिशय क्षेत्र सीपुर (राज.), श्री नितिन जैन

वर्ष 2017, आदिनाथ दि. जैन चैत्यालय, चीतरी (राज.), कु. शौर्य सुपुत्र श्री भूपेश जैन

वर्ष 2018, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा (राज.), श्री कान्तिलाल जी जैन

विशेष परिस्थिति को छोड़कर उपरोक्त चातुर्मास निश्चित।

निवेदन-संभावना व चातुर्मास पद्धति

1. अतिशय क्षेत्र सीपुर में आजीवन चातुर्मास करने हेतु ऊर्जावान् गुरुभक्त श्री नितिन जैन द्वारा प्रायः 300 बार निवेदन।
2. ग्राम नन्दौड़ में भी वर्ष 2015 का चातुर्मास सम्पन्न होकर आगामी 5 (असीम) चातुर्मास कराने हेतु निवेदन। विशेष परिस्थिति को छोड़कर यहाँ 2019 में चातुर्मास निश्चित है।
3. सागवाड़ा नगर की ओर से भी आगामी 5 से 10 चातुर्मास कराने हेतु निवेदन। यहाँ भी आचार्य श्रीसंघ के दो चातुर्मास सम्पन्न हो चुके हैं।
4. ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा में भी आगामी वर्ष 2018 के चातुर्मास हेतु श्री कान्तिलाल जी जैन द्वारा व्यक्तिगत से लेकर समाजजनों द्वारा आग्रहपूर्ण निवेदन। यहाँ पर 2007 को आचार्य श्रीसंघ का चातुर्मास हुआ है।
5. उदयपुर नगर में आचार्य श्रीसंघ के अब तक 3 चातुर्मास सम्पन्न हो चुके हैं। सेक्टर-11 वालों का पुनः आगामी चातुर्मास हेतु निवेदन।
6. आध्यात्मिक प्रेमी अंतर्राष्ट्रीय ज्योतिष विज्ञानी श्री मनोहर सिंहजी कृष्णावत (हिन्दू भक्त) ग्राम थाना में दीर्घकालिक प्रवास हेतु निवेदन।
7. श्री हीरालाल जी नवलखा (श्वे. भक्त) ग्राम भुताला द्वारा व्यक्तिगत चातुर्मास कराने हेतु निवेदन। माँगीलाल मादरेचा आदि द्वारा भी श्वेताम्बर जैन भक्तों के यहाँ चातुर्मास हेतु निवेदन।

उपरोक्त श्रृंखला में अन्य ग्राम-नगरों के भक्त-शिष्यों द्वारा व्यक्तिगत से लेकर समाजजनों की ओर से आचार्य श्रीसंघ के चातुर्मास कराने हेतु अनेक वर्षों से प्रयास जारी है। जैसे-**राजस्थान** के उदयपुर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, बिजौलिया, लावा, निवाई, मूँगाणा, नरवाली, आसपुर, कानपुर, कुशलगढ़, ऋषभदेव आदि।

महाराष्ट्र के देवल गाँव राजा, धर्मतीर्थ, औरंगाबाद, नागपुर, नासिक, आडूळ, मुम्बई आदि।

मध्यप्रदेश के थांदला, राणापुर, इन्दौर आदि।

उत्तरप्रदेश के तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी (T.M.U.) मुरादाबाद आदि।

आचार्यश्री चातुर्मास करने हेतु भावना-भक्ति-आवश्यकता-प्राथमिकता-प्रायोगिकता-प्रभावना आदि को दृष्टिगत रखते हुए याचना-दबाव-प्रलोभन-आडम्बर आदि से रहित होकर निर्णय लेते हैं, जिससे व्यक्ति से लेकर समाजजनों का श्रम, समय, धन, साधन व ऊर्जा का दुरुपयोग न हो एवं देश-विदेश में जो महती धर्म प्रभावना हो रही है उसके लिए बाधा न होकर अनुकूल वातावरण बने।

सार्थक श्रुत पञ्चमी प्रभावना

अरावली पर्वत श्रृंखला में स्थित सांस्कृतिक धार्मिक गुरुभक्त वाग्वर अञ्चल के सुग्राम ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा में दीर्घ प्रवासरत प.पू. स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ द्वारा चल रही ज्ञान-विज्ञान-स्वाध्याय की महती वैश्विक-आध्यात्मिक प्रभावना में अभूतपूर्व ऐतिहासिक सार्थक श्रुत पञ्चमी पर्व मनाने से स्थानीय भाविक जनों व आचार्य श्रीसंघ को अलौकिक अद्वितीय अपूर्व आनंद व आह्लाद की अनुभूति हुई।

पर्व की पूर्व संध्या पर कॉलोनी के बच्चों-बच्चियों व महिलाओं द्वारा प्रेरक व बोधप्रद सांस्कृतिक नाटकों का मञ्चन किया गया एवं प्रातःकाल सुसज्जित ग्रंथों को महिलाओं द्वारा सिर पर धारण करते हुए चारों चैत्यालयों में जिनवाणी ग्रंथों को विराजित किया गया। श्रुत स्कंध विधान के पश्चात् धर्मसभा में आचार्यश्री सृजित कृतियाँ 1. अपरिग्रह परमोधर्म-परिग्रह परमो अधर्म ग्रंथांक-253, 2. सामान्य ज्ञान-नैतिक शिक्षा-अनुभव गीताञ्जली, धारा...48, ग्रंथांक-254 का एवं आचार्य कुन्थुसागर

जी का विधान कृति का विमोचन हुआ। इस अवसर पर श्रद्धालु जनों ने गुरुदेव के साहित्य प्रकाशन हेतु ज्ञानदान भी किया, जिसका प्रोत्साहन व अनुमोदन श्री गुरुदेव ने स्व-रचित साहित्य व आशीर्वाद देकर किया।

सभा के अंत में गुरुदेव ने श्रुत पञ्चमी का महात्म्य बताते हुए कहा कि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रेरित यह एक मात्र पर्व है जो साहित्य सृजन स्वाध्याय ज्ञान आराधना व प्रभावना की दृष्टि से विशेष पर्व है। प्रायः 6 माह से कॉलोनीवासियों ने निरंतर जो स्वाध्याय-आहारदान-ज्ञानदान-ज्ञानार्जन-सेवा-वैयावृत्ति पूर्ण उत्साह व लगन से की है, उस महान् उपलब्धि की आचार्य श्रीसंघ ने भूरि-भूरि प्रशंसा व अनुमोदना करते हुए कहा कि यहाँ प्रायोगिक रूप से प्रतिदिन श्रुतपर्व मनाया जा रहा है। घोर अंधकार व विपरीत परिस्थितियों में भी यहाँ के भव्य जनों ने आदर्श प्रस्तुत किया है। आज का यह श्रुत पञ्चमी पर्व मेरे जीवन में सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। मैं भाव व सत्य का पुजारी व उपासक हूँ एवं मैं जो भी कार्य करता हूँ वह सत्य-समता-आत्मा व विश्व के लिए निस्पृहतापूर्वक करता हूँ। अंत में कहा यह पर्व आप सबके लिए ज्ञान व मोक्ष का कारण बने ऐसी शुभकामना। **प्रस्तुति-श्रमण सुविज्ञसागर**

श्रुतपञ्चमी : मेरे जीवन में घटित सत्य-प्राप्त शिक्षा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

सुनो हे ! शिष्य तुम्हें बताऊँ, श्रुतपञ्चमी से मुझे प्राप्त शिक्षा।
इस पर्व की कथा/(घटना) सम, मेरे जीवन की भी सत्य घटना।। (स्थायी)

धरसेन आचार्य को जब ज्ञात हुआ, मेरे अनन्तर श्रुत लोप होगा।
अंगपूर्व का मेरा आंशिक ज्ञान, लिपिबद्ध हो जिससे लोप न होगा।।
ऐसी भावना से सूरी धरसेन ने, सौराष्ट्र/(गिरनार) से भेजा पत्र विशेष।
आंध्रप्रदेश के वेणा नदी तट पर, आयोजित साधु सम्मेलन के पास।। (1)

पत्र वाचन कर दो सुयोग्य श्रमण, वहाँ से आये सूरी धरसेन के पास।
धरसेन जी ने पुनः नामकरण किया, 'पुष्पदंत' व 'भूतबलि' विशेष।।
परीक्षा अनन्तर द्वय शिष्यों को, आचार्य देव ने पढ़ाया सिद्धांत।

शिक्षा अनन्तर दोनों शिष्यों ने, रचा षट् खण्डागम सिद्धांत।। (2)
रचना पूर्ण होने पर उत्सव मनाया, जिनवाणी अवतार निमित्त।
तब से 'श्रुतपञ्चमी' पर्व शुभारंभ, हुआ जिनवाणी के निमित्त।।
ऐसी ही घटना मेरे जीवन में भी, क्षुल्लक अवस्था से घटित हो रही।
आचार्य विमलसागर-कुंथुसागर, भरत-सिंधु-सन्मति सिंधु के कारण।। (3)
महाराष्ट्र के नीरानगर से संदेश, आया मेरे पास (1979) अकलुज में।
स्मारिका हेतु लेख भेजने हेतु, उपाध्याय भरतसागर जी से।।
मेरे लेख से आनंदित हुए, सूरी विमलसागर व भरतसागर।
श्रवणबेलगोल में मेरी मुनि दीक्षा हुई, सहस्राब्दी महोत्सव (1981) पर।। (4)
वहाँ उपस्थित थे प्रायः दो सौ श्रमण, व लाखों नारी व नर।
आचार्य विमल सिन्धु विद्यानंद व, मम गुरु आचार्य कुंथुसागर।।
वहाँ से लेकर धर्मस्थल (1983) तक, मुझे ग्रंथ लिखने हेतु कहे गुरुवर।
आचार्य विमलसागर कुंथुसागर, भरतसागर सन्मतिसागर।। (5)
जिसके कारण मैंने ग्रंथ लेखन, प्रारंभ किया तुमकुर (कर्नाटक/1983) नगर में।
पुनः उपाध्याय भरतसागर ने, मुझे प्रेरित किया सोनागिरी (1989) में।।
पुनः आचार्य विमल सिन्धु ने, इसी हेतु पत्र भेजा बड़ौत (1989) नगर में।
तब से अभी तक मेरे साहित्य, लेखन चल रहा है अविरल से।। (6)
इसी से मुझे शिक्षा मिल रही, अनेक व विविध प्रकार।
गुरु आज्ञा पालन व शोध-बोध, सहित ज्ञान-विज्ञान प्रचार।।
वीरसेन स्वामी ने रची है धवला, व जय धवला की टीका।
उससे शिक्षा लेकर लिख रहा हूँ, विभिन्न प्रकार की समीक्षा।। (7)
ग्रंथ लेखन भी है परम तप, महानतम ज्ञान का दान।
तीर्थंकर गणधर व पूर्वाचार्य, तक करते हैं ज्ञान दान।।
श्रुतज्ञान है परोक्ष केवलज्ञान, जिससे होता आत्मकल्याण।
इन सब कारणों से 'कनकनन्दी' भी, कर रहा है ग्रंथ लेखन।। (8)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 09.06.2016, रात्रि 11.22 (श्रुतपञ्चमी)
(यह कविता कॉलोनी में स्वाध्याय में आने वालों के कारण बनी।)

मेरी भाषा अन्य को क्यों लगती है श्रेष्ठ व क्लिष्ठ (गलत)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन.....)

मेरी भाषा को अधिकांश जन मानते/(बोलते) है श्रेष्ठ व क्लिष्ठ।
पहले-पहले तो अधिकांश जन अज्ञानते से मानते है गलत।।

सामान्य जन से (लेकर) आचार्य तक तथाहि वैज्ञानिक प्रोफेसर्स।
मेरी भाषा की व्यापकता व शुद्धता से होते है अपरिचित।।

इसी में निम्नोक्त अनेक कारणों का मैंने किया है अनुसंधान।
भाषा-व्याकरण व विविध विषयों का नहीं होता सभी को ज्ञान।।

मेरी भाषा में मैं प्रयोग करता हूँ संस्कृत के तत् सम शब्द।
चौदह भाषाओं के उत्कृष्ट शब्द व आगम आध्यात्म गणित शब्द।।

इतिहास पुराण मनोविज्ञान भौतिक रसायन व न्याय (कानून) संविधान।
नय निक्षेप व अनेकांत स्याद्वाद प्रमाण तर्क व आधुनिक ज्ञान।।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार मेरा उच्चारण होता है शुद्ध।
ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत व संयुक्त समास-संधी संयुक्त के शब्द।।

हिन्दी भाषा में नहीं है नपुंसक लिंग नहीं करते अकारान्त उच्चारण।
संयुक्त शब्दों को न शुद्ध लिखते नहीं करते शुद्ध उच्चारण।।

अति ही अल्प सामान्य शब्दों का करते रहते है सदा प्रयोग।
तत् सम तत् भव शब्दों से रहित देशी व विदेशी (उर्दू) शब्द प्रयोग।।

जिससे उन्हें मेरी भाषा को समझने में होती है समस्या।
दीर्घकाल मेरे पास स्वाध्याय करने पर धीरे-धीरे दूर होती समस्या।।

इन सभी कारणों से उन्हें आगम समझने में होती कठिनाई।
जिसके कारण जैन धर्म के महान् सिद्धांत नहीं समझ पाते।।

जिसके कारण महान् जैन धर्म का नहीं हो पा रहा सही प्रचार।
इन समस्याओं को दूर करने हेतु 'कनकनन्दी' कर रहा प्रयास।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 10.06.2016, मध्याह्न 1.35
(यह कविता कॉलोनी में स्वाध्याय में आने वालों के कारण बनी)

स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुदेव का पूजन

(चाल : नवदेवता पूजन.....)

रचनाकार : विजयलक्ष्मी जैन
सहायक : आर्यिका सुवत्सलमती

सूरी कनकनन्दी गुरुवर, तीन लोक में श्रेष्ठ है।
गुरुदेव ने आगम को विश्व में पहुँचाया है।।

स्वाध्याय तपस्वी मान्य जग में हम सदा पूजन करे।
आह्वान कर उनके गुणों को, मन में चिन्तन करे।।

(ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं)

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापन

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

जल- शुद्ध भावों का उदक ले कर्म मल धोवे सदा।
अन्तःकरण को शुद्ध करके गुरु गुणों को पावे सदा।।

कनकनन्दी गुरुवर की भक्ति से पूजा करे।
ज्ञान का भण्डार भरके अज्ञान मिथ्यात्व हरे।।

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन- चंदन सम मन को घिसकर मन सुगन्धित हम करे।
कनकनन्दी गुरुवर सम समता भाव धरे।। कनकनन्दी ..... हरे।।

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत- अखण्ड अक्षत के समान अखण्ड पद प्राप्त करे।
आत्मा के अविनश्वर रूप का चिन्तन करे।। कनकनन्दी ..... हरे।।

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प- सुरभित कमल लेकर मन को भी हम मृदु करे।
आत्मविशुद्धि करके गुरुसम आत्म अनुभव हम करे।।
कनकनन्दी गुरुवर की भक्ति से पूजा करे।
ज्ञान का भण्डार भरके अज्ञान मिथ्यात्व हरे।।

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य- रसगुल्ला सम अन्तर बाहर मन (को) सुरस करे।
खीर पेड़ा जलेबी सम आत्म रस पान करे।। कनकनन्दी...

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप- आगम ज्ञान के द्वारा कर्मों को जर-जर करे।
/(ज्ञान का दीप जलाकर स्वयं प्रकाशी हम बने।।)
मोहान्धकार को नाशकर, निष्कलंक हम बने। कनकनन्दी...

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप- अष्ट कर्म धूप लेकर ज्ञानाग्नि में खेऊँ सदा।
अष्ट कर्म नष्ट करके मोक्ष सुख पाऊँ मुदा/(सदा)।। कनकनन्दी...

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल- आम केला लीची अमरूद फल से पूजन करें (आहार दें)।
फल रसों सम मधुर बनकर आत्म रसिक हम बनें।। कनकनन्दी...

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य- अष्ट द्रव्यों को चढ़ाकर सिद्ध गुण चिन्तन करे।
आत्म गुणों को बढ़ाकर स्वातमा में स्थिर बने। कनकनन्दी...

ॐ ह्रूँ आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव चरणकमलेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय

अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति धारा-पाद प्रक्षालन

साम्य जल का कलश ले गुरु चरणों को पखारूँ।
यही भावना विजया की समतामयी बनूँ।।
कमल गुलाब के सुमन सम कोमल भाव धरूँ।
आत्मा को परमात्मा बना आत्म सुख को वरूँ।।

जयमाला

(चाल : जय जय श्री अरिहंत....., नवदेवता जयमाला.....)

जय-जय श्री कनकनन्दी गुरुदेव हमारे। भव्यों को स्वातमा का सुबोध करावे।।
उनके गुणों की मैं सदा आराधना करूँ। शान्ति व समता से मोक्ष को वरूँ।।

आत्म अनुभवी गुरुदेव हमारे। प्रत्येक विषय को आत्मा से ही जोड़े।।
गुरुदेव से 'मैं' का मैं अनुभव पाऊँ। उस अनुभव से आत्मशक्ति पाऊँ।।

प्रकृति प्रेमी है आचार्य हमारे। प्रकृति प्रेमी हमको भी बनावे।।
मिथ्यादृष्टि (पापी) से भी ये शिक्षा ही गहे। किसी भी जीव से घृणा न करे।।

आगमवेत्ता है गुरुदेव हमारे। आगमानुसार ही आचरण करे।।
स्वयं का स्वयं में अनुभव मैं करूँ।।

गुरु की आज्ञा ही शिरोधार्य मैं करूँ। मैं ही शुद्ध-बुद्ध (हूँ) सच्चिदानंद हूँ।।
ज्ञानानंदमय सुख स्वरूपी हूँ। दया करुणा से ओत-प्रोत गुरु हैं।।

छत्तीस मूलगुण युक्त सुरीवर है। क्षणमात्र में जिज्ञासा का समाधान करे है।।
विद्या वाचस्पति व वाग्मी गुरुवर है। आगम चक्षुधारी हैं गुरुदेव हमारे।।

सूक्ष्म दृष्टि दे हम भव्यों को तारे। मैं दोषों से दूर रह निन्दा से बचूँगी।।
गुरुदेशना को प्राप्त कर मोक्ष पथिक बनूँगी। अव्याबाध अगुरुलघु गुण युक्त हूँ।।

अठारह दोष से मुक्त निष्कलंक हूँ। तीर्थंकर सम गुरुदेव का समवशरण है।।
सभी भव्य जीव आत्मकल्याण (को) करे है।

ॐ ह्रूँ आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव चरणेभ्यों जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- आगम रहस्यों को खोले आगम ज्ञान भण्डार।
उनकी दिव्य देशना से सभी पावे निर्वाण।।
।।इत्याशीर्वाद पुष्पांजली क्षिपेत्।।

आचार्यश्री कनकनन्दी को आ. ऋद्धिश्री का पत्र

श्री परम गुरुदेव नमः

अनंत वंदनीय, परम श्रद्धेय, स्व-पर कल्याणकर्ता मम् आराध्य देव आचार्यश्री के पावन श्री चरणों में त्रिभक्तिपूर्वक अनंत बार-बार नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।। संघस्थ सभी पूज्य गुरुदेव एवं माताजी के पावन श्री चरणों में कोटि-कोटि नमोस्तु-नमोस्तु वंदामि-वंदामि।

गुरुदेव आपका एवं संघ में सभी का आरोग्य, रत्नत्रय कुशल होगा। गुरुदेव आपके शुभाशीष से हमारी दक्षिण भारत की यात्रा सकुशल हो गई। अभी हम कुंभोज बाहुबली में है। यहाँ पर ब्र. सुजाता दीदी राजवार्तिक एवं जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड का स्वाध्याय करा रहे हैं। बहुत जगह स्वाध्याय देखा लेकिन आपकी जो पद्धति है उस समान पद्धति को कहीं नहीं देखा। आपकी आज भी दक्षिण भारत में एक वरिष्ठ ज्ञानी साधु की छवि अंकित है। हम जहाँ भी गये वहाँ के लोग आपका नाम सुनते ही आपके ज्ञान को नमस्कार करके आपको याद करते हैं। बेलगाम के बहुत श्रावकों ने आपके श्री चरणों में नमोस्तु समर्पित किया है।

गुरुदेव आपका आरोग्य-रत्नत्रय सदैव सकुशल रहे जिससे जिनशासन की महती प्रभावना एवं मुझ जैसे अल्पज्ञों को सम्यग्ज्ञान व संयम की प्राप्ति होती रहे ऐसी शुभ प्रार्थनाओं के साथ गुरुदेव आपके दर्शन एवं शुभाशीष की अभिलाषा के साथ।।

आचार्य भगवन् के पावन श्री चरणों में मेरा बारम्बार कोटि-कोटि नमोस्तु-नमोस्तु, संघस्थ सभी पूज्य गुरुजनों के पावन श्री चरणों में कोटि-कोटि नमोस्तु-नमोस्तु वंदामि-वंदामि।।

-साध्वी ऋद्धिश्री

दिनांक 25.05.2016, कुंभोज (महा.)

आचार्यश्री कनकनन्दी को आ. जिनवाणी का पत्र

ॐ सत्य साम्य शांति सुखाय नमः

परम पूज्य सतत स्मरणीय वैज्ञानिक धर्माचार्य ज्ञानी, ध्यानी, ओजस्वी, तेजस्वी, सरल स्वभावी गुरुदेव के चरण कमलों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु। संघस्थ सभी त्यागी गणों को यथायोग्य नमोऽस्तु, वंदामि, प्रतिवंदामि, शुभ मंगलमय आशीर्वाद।

अत्र कुशलं। तत्रास्तु।

हे भगवन्! आपका और संघस्थ त्यागीगणों का स्वास्थ्य, रत्नत्रय कुशल मंगल होगा। मैं पार्श्वनाथ भगवान् के चरण कमलों में बैठकर प्रार्थना करती हूँ, शुभ मंगलमय भावना भाती हूँ कि आप सबका स्वास्थ्य रत्नत्रय कुशल मंगलमय रहे।

हे भगवन्! आपके शुभाशीर्वाद से हम सबका स्वास्थ्य कुशल है। यहाँ पर जैन और अजैन में भूगर्भ से निकली हुई पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति को लेकर कोर्ट में केस था। अभी वह झगड़ा मिटकर भगवान् का मंदिर बन रहा है। मैंने इसी बीच 4 साल से एक उपवास एक आहार का नियम लिया था, धर्म धर्मका धरोहर धर्म का अनायतन बचे इसलिये। अभी समाज में एकता है दूसरे जाति के लोग भी जैन धर्म को स्वीकार कर दिया है यह सब आपका आशीर्वाद है। मुझे आपके अनुभव बहुत याद आती है गुरुदेव।

ग.आ. जिनवाणी माताजी
दिनांक 04.06.2016

श्री चारित्र शुद्धि व्रत समुच्चय पूजन

(1234 व्रत पूजन)

-आचार्य कनकनन्दी

(लय : तुम दिल की....., आत्मशक्ति....., सुनिये जिन अर्ज.....)

आह्वान-(भावनात्मक रूप से पूज्यों का सान्निध्य प्राप्त करना)

चारित्र मोक्ष का प्रधान कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान से सम्पन्न।
शैलेश अवस्था में चारित्रपूर्ण जिससे होता साक्षात् निर्वाण।
निर्वाण पद हेतु पूजूँ चारित्रपूर्ण बारह सौ चौतीस व्रत पूजन।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुण सहित अर्हत् परमेष्ठिन्
अत्र-अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन्/अत्र तिष्ठः तिष्ठः
ठः ठः स्थापनम्/अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं।

अष्टक

1. जल-(आत्मिक विशुद्धि व जन्मजरामृत्यु विनाश के प्रतीक)

प्रासुक सुगन्धित जल भर लाऊँ प्रभु चरण में भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःख हारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने जलंनिर्वपामीति स्वाहा।

2. चन्दन-(संक्लेश ताप विनाश व भाव आह्लाद के प्रतीक)

मलयागिरि शीतल चन्दन लाऊँ प्रभु चरणे भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने भवतापनिवारणाय चंदनं....।

3. अक्षत-(संसार उत्पादक कर्मनाश व अक्षयपद के प्रतीक)

धवल अक्षत तंदुल मैं लाऊँ प्रभु समक्ष भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतं...।

4. पुष्प-(ब्रह्मभाव विकास व ज्ञानानन्द रस के प्रतीक)

कमल गुलाब जुही मैं लाऊँ प्रभु चरण में भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं...।

5. नैवेद्य-(क्षुधा रोग विनाश के प्रतीक)

लड्डू पेड़ा जलेबी मैं लाऊँ प्रभु समक्ष भक्ति से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने क्षुधारोगनिवारणाय नैवेद्यं...।

6. दीपक-(अज्ञान मोहन्धकार विनाश के प्रतीक)

गो-घृत (का) दीपक मैं जलाऊँ प्रभु समक्ष भक्ति से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने मोहन्धकारविनाशनाय दीपं...।

7. धूप-(अष्टकर्म नाश व अष्टगुण प्राप्ति के प्रतीक)

सुगन्धित धूप भक्ति से लाऊँ प्रभु समक्ष भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं...।

8. फल-(मोक्षफल प्राप्ति के प्रतीक)

केला नारिकेल आम मैं लाऊँ प्रभु समक्ष भाव से चढ़ाऊँ।
बारह सौ चौतीस प्रोषध उपकारी पूजूँ जिनपद भवदुःखहारी।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने महामोक्षफलप्राप्ताय फलं...।

9. अर्घ्य-(अनर्घ्य गुण समूह प्राप्ति के प्रतीक)

अष्टकर्म के नाशन हेतु अष्ट मूलगुण प्राप्ति हेतु।
अष्टम वसुधा प्राप्ति हेतु अर्घ्य चढ़ाऊँ मोक्ष हेतु।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिषद्गुणसहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं...।

जयमाला

सत्यरूपाय नमो नमः विश्वरूपाय नमो नमः।
द्रव्यरूपाय नमो नमः परमेश्वराय नमो नमः।

सनातनाय नमो नमः ध्रौव्यरूपाय नमो नमः।

गुणरूपाय नमो नमः सर्वात्मने नमो नमः।

अजराय नमो नमः अमराय नमो नमः।

अमृताय नमो नमः अव्ययाय नमो नमः।

सूक्ष्मरूपाय नमो नमः विशालाय नमो नमः।

अनन्तरूपाय नमो नमः सर्वव्याप्ताय नमो नमः।

अस्तिस्वरूपाय नमो नमः नास्तिस्वरूपाय नमो नमः।

अव्यक्तरूपाय नमो नमः व्यक्तरूपाय नमो नमः।

एकरूपाय नमो नमः अनेकरूपाय नमो नमः।

ज्ञानरूपाय नमो नमः ज्ञेय-रूपाय नमो नमः।

परमरूपाय नमो नमः अन्तिमरूपाय नमो नमः।

अन्तःरूपाय नमो नमः बाह्यरूपाय नमो नमः।

प्रज्ञारूपाय नमो नमः प्रमेयरूपाय नमो नमः।

ध्यानरूपाय नमो नमः ध्येयरूपाय नमो नमः।

रत्नत्रयाय नमो नमः शीलगुणयुक्ताय नमो नमः।

अष्टदश दोष रहित नमः पंचमहाव्रत सहित नमः।

पंचसमिति सहित नमः त्रिगुप्ति गुप्त सहित नमः।

क्षमादि दशधर्म सहित नमः शुद्ध चारित्र सहित नमः।।

दोहा- तव गुण प्राप्ति हेतु तव पूजन बारह सौ चौतीस व्रत पूजन।
भव दुःख हरण हेतु तव पूजन आत्म वैभव हेतु 'कनक' करे पूजन।।

मंत्र- ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंषद्गुण सहिताय बारह सौ चौतीस शुद्ध चारित्र व्रतमंडिताय अर्हत् परमेष्ठिने जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महान् सफलताएँ पाने वाले

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

जिसने नहीं जाना नन्हा (वट) बीज से, इतना विशाल वृक्ष बना।

उन्हें क्या मालूम नन्हा बीज में, विशाल वृक्ष समाया हुआ।।

जिसने नहीं जाना छोटे अणु में, इतनी शक्तियाँ छिपी हुई।
उन्हें क्या मालूम (आत्मा) कर्म से लेकर, ब्रह्माण्ड में कितनी शक्ति छिपी।।

तथाहि जिनको विश्वास नहीं है, मुझ में अनंत शक्तियाँ हैं।
वे ही होते दीन-हीन-दंभी व महान् लक्ष्य से रहित हैं।।

जिनको ज्ञान-भाव-आत्मविश्वास है, मुझमें अनंत शक्तियाँ।
वे न होते दीन-हीन-दंभी स्वयं को न मानते क्षुद्र कृतियाँ।।

वे करते हैं कल्पना ही महान्, विचार-उच्चारण भी महान्।
कार्य योजनाएँ व कार्य संपादन, करते सदा ही वे महान्।।

लेखन प्रवचन हाव-भाव सभी, होते हैं महानता से प्रेरित।
क्षुद्र लक्ष्य अंधानुकरण से, कभी न होते वे प्रभावित।।

आलस प्रमाद व ढोंग-पाखण्ड दिखावा आडम्बर प्रतिस्पर्द्धा।
परनिन्दा अपमान भेद-भाव छोड़, महान् कार्य करते सदा-सर्वदा।।

अन्य लोग भी होते प्रभावित, बनते उन्हीं के अनुगामी।
यथायोग्य सेवा, सहभागी बनते, जो होते गुणग्राही धर्मानुरागी।।

तीर्थंकर-बुद्ध-ऋषि-मुनि-वैज्ञानिक समाज सुधारक क्रांतिकारी जन।
लेखक चिन्तक दार्शनिक कवि, निःस्वार्थ भावी सच्चे धार्मिक जन।।

नितिन भाई, मांगीलाल मादरेचा में ऐसे ही अनेक गुण मैंने पाया।
उनसे शिक्षा लेने के हेतु, 'आचार्य कनक' ने काव्य बनाया।।

सीपुर, दिनांक 17.07.2016, मध्याह्न 12.00

वर्षायोग स्थापन-गुरु पूर्णिमा-वीर शासन जयंती उत्साहपूर्ण सम्पन्न

अरावली की सुरम्य पर्वत श्रृंखलाओं के बीच स्थित मेवाड़ अञ्चल के प्रगतिशील अतिशय क्षेत्र सीपुर में प.पू. वैश्विक संत प्रवर वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ का वर्षायोग स्थापन हुआ। इस क्षेत्र में आचार्यश्री संघ के द्वितीय

चातुर्मास से समता तीर्थ सीपुर परिवार व अञ्चल के जन-गण-मन अत्यंत आह्लादित व आशान्वित हुए।

मंगल प्रवेश के शुभावर पर आचार्यश्री ने अपने श्रीसंघ के इस एकांत जंगल में चातुर्मास व प्रवास करने के कारण बताते हुए कहा कि मैं सत्ता-संपत्ति-भीड़-आदेश-निर्देश-वर्चस्व-प्रभुत्व से परे रहकर आध्यात्मिक वैश्विक प्रभावना करना चाहता हूँ। देश-विदेश के अनेकों महापुरुषों के उद्धरण देते हुए कहा कि आप अकेले ही महान् कार्य कर सकते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप श्रीसंघ के आगामी वर्षों के चातुर्मास कराने हेतु एक-एक व्यक्ति से लेकर समाज व संगठन आतुर व उत्साहित हैं। वात्सल्य रत्नाकर आचार्यश्री विमलसागर जी गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आचार्य श्रीसंघ ने अपनी भावभीनी श्रद्धा व भक्ति प्रगट की, जिससे उपस्थित श्रोता अत्यंत भाव-विभोर हुए। इस अवसर पर आचार्यश्री सृजित कृतियाँ 1. परम स्वतंत्रता गीताञ्जली धारा...49, ग्रंथांक 256, 2. जैन धर्म रहस्य गीताञ्जली धारा...50, ग्रंथांक 257 एवं भाव संग्रह द्वितीय संस्करण ग्रंथांक 255 का विमोचन हुआ। आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के जीवन चरित्र पर आधारित कृति ''विलक्षण ज्ञानी'' का भी विमोचन हुआ। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर आगत भक्त-शिष्यों के गुरुदेव ने गुरु के व्यापक आध्यात्मिक स्वरूप का प्रभावी बोध कराया। विशेष परिस्थिति को छोड़कर आचार्य श्रीसंघ के वर्ष 2019 तक के चातुर्मास निश्चित हो चुके हैं। आगे भी अनेक प्रदेशों में आजीवन या प्रायः 150 चातुर्मास करने हेतु निवेदन है। सीपुर अतिशय क्षेत्र उद्धारक ऊर्जावान् महान् लक्ष्य धारक गुरुभक्त नितिन जैन की उदार भावना है कि आगामी वर्ष 2021 का आचार्यश्री कुंथुसागर जी गुरुदेव ससंघ व उनके सर्व उपसंघों का सम्मेलन स्वरूप चातुर्मास अतिशय क्षेत्र सीपुर में होकर सामूहिक युग प्रतिक्रमण, अध्ययन, मनन हो जिससे दिगम्बर जैन समाज में व्याप्त धार्मिक व सामाजिक विषमता वैमनस्य व फूट दूर हो, जिससे जैन धर्म की महती वैश्विक प्रभावना हो। इस हेतु समस्त संघ, उपसंघों को निवेदन पत्र प्रेषित किये जा रहे है।

शुभाकांक्ष सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

आध्यात्मिक अनुभवी आचार्य कनकनन्दी को क्यों नहीं समझ पाते अन्य जन!

-क्षु. सुवीक्षमती

(चाल : कहाँ गये चक्री जिन जीता.....)

तुम हो अनुपम अलौकिक, महिमाधारी गुरुवर।
तुम-सा न कोई देखा मैंने, सम्प्रति भूतल पर।।

समता आदि सद्गुण के, तुम तो हो रत्नाकर।
तव भक्ति से रिक्त रहते, मूढमति पामर।।

संकीर्णता से आबाद्ध को न, भाये व्यापकता।
कूप-मण्डुक जन क्या जाने, सिन्धु की सत्ता।।

आत्म-विश्वास से ओतप्रोत, तुम आत्मा के कामी।
तव दृढ़ता को कैसे समझे, अभिमानी प्राणी।।

आपकी दूरदृष्टि को न, समझे अधीर जन।
तत्काल फल को चाहने वाले, अज्ञ मोही जन।।

पूर्वाग्रह से ग्रसित जो है, स्वार्थी दुष्ट जन।
पचा नहीं पाते हैं वो तव, गहन चिन्तन।।

पूर्व में तुमको जो गलत माने, बाद में पछतावे।
अपनी भूलों का प्रायश्चित्त ले, श्रद्धावनत होवे।।

मन-वच-तन से करके समर्पण, तव सेवा चाहे।
आजीवन तेरे आदर्शों पर, चलना है चाहे।।

आपके भाव-व्यवहार-अनुभव, हैं जग से न्यारे।
अतएव समझ न पावे, आपको जन सारे।।

अनादि से ही हो रहे हैं, महापुरुष तिरस्कृत।
पार्श्व प्रभु को समझ न पाया, कमठ दश भव तक।।

सीपुर, दिनांक 28.07.2016, मध्याह्न 2.00